हमारे रीति-रिवाज

लेखक
प्रो० जगदीश सिंह

प्रकाशक
नैशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क, देहली

मूल पंजाबी पुस्तक "साडे रस्म रिवाज" का हिन्दी रूपान्तर

हिन्दी रूपान्तरकार
बाल कृष्ण, एम० ए०

मूल्य तीन रुपये आठ आने

मुद्रक
युगान्तर प्रेस
डफरिन पुल, दिल्ली

अपनी जीवन-संगिनी को

विषय-सूची

विषय	पृ

तीसरा भाग—घरेलू जीवन

परिशिष्ट

हम लोग दुखी हैं, हमारा देश दुखी है, हमारा समाज दुखी है, हमारी स्त्रिया दुखी हैं, हमारे बच्चे दुखी हैं। हमारा गृहस्थ-जीवन नरक के समान है, दुखों से भरपूर है। हमारे सगे-सम्बन्धी हमारे शत्रु हैं, हमारे रीति रिवाज हमारे लिये क्लेशों और सकटों के मूल हैं। हम अपने आदर्शों से गिर चुके हैं, हम दिन दिन पतन के गढ़े में गिरते जा रहे हैं, हम अपने आप को भूल चुके हैं।

हमारे दुखों का क्या कारण है? हमें क्यों ऐसा लगता है जैसे हमारा घर हमें काट खाएगा?

हमारा गृहस्थ-जीवन किस प्रकार सुखी हो सकता है? उसमें किन किन सुधारों की आवश्यकता है? हम किस तरह सुख के दिन काट सकते हैं? हमारे सामाजिक और गृहस्थ-जीवन में पुरुष तथा स्त्री का क्या स्थान होना चाहिये? बच्चों के साथ हमें कैसा बर्ताव करना चाहिये?

हमारे भाईचारे-सम्बन्धी रिवाज किस तरह हमारे दुखों का कारण बन रहे हैं? इनका क्या वास्तविक अर्थ, रूप और मन्तव्य था, और हम क्या कर रहे हैं? आज के हमारे रीति रिवाजों एव सामाजिक मर्यादाओं में क्या-क्या दोष हैं? हम इनका सुधार किस तरह कर सकते हैं?

ससार के अन्य देश और राष्ट्र किधर जा रहे हैं? हम उनकी क्या-क्या रीसें कर रहे हैं? ये रीसें हमें किधर ले जा रही हैं; तथा वे बातें उन्हें किधर ले गई हैं?

छोटी अवस्था में मैंने अपने भाईचारे को सहज स्वभाव से देखा। इस सम्बन्ध मे मेरे कुछ निश्चित विचार बने या नहीं, मैं कह नहीं सकता। स्कूल के अध्ययन-काल मे किसी समझदार अध्यापक ने हमारे सामाजिक रीति रिवाजों के सम्बन्ध में कभी बातचीत की हो, याद नहीं पड़ता। कालिज के अध्ययन काल में कोई कोई प्रोफेसर पढ़ाते-पढ़ाते सामाजिक रीति-रिवाजों के सम्बन्ध मे कभी २ कुछ कह डालते थे। कुछ बातें दिल में बैठ गई, कुछ विचारों की जड़ें मन में जमने लगीं। धीरे-धीरे विचार अकुरित होने लगे, मस्तिष्क उन पर गहन मनन करने लगा, फिर उन विचारों ने लेख का रूप धारण कर लिया। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में लेख लिखे। उन्हें पसन्द किया गया तो शौक बढ़ गया। तब इस विषय पर लिखने लिखाने का सिलसिला बढ़ने लगा।

विचारों और लिखने लिखाने ने जीवन में कुछ आदर्श बना दिये। मैंने इन अनावश्यक एव अनुचित बधनों से छुटकारा पाने का निश्चय कर लिया, बुरे रीति-रिवाजों को त्यागने की भावना ने अभिलाषा का रूप धारण कर लिया। एक सुगम, सरल एव सादे विवाह का प्रयोग किया। बहनों ने इस प्रयोग में मेरा साथ दिया,

१

छोटी अवस्था में मैंने अपने भाईचारे को सहज स्वभाव से देखा। इस सम्बन्ध मे मेरे कुछ निश्चित विचार बने या नहीं, मैं कह नहीं सकता। स्कूल के अध्ययन-काल में किसी समझदार अध्यापक ने हमारे सामाजिक रीति रिवाजों के सम्बन्ध में कभी बातचीत की हो, याद नहीं पड़ता। कालिज के अध्ययन काल में कोई-कोई प्रोफेसर पढ़ाते-पढ़ाते सामाजिक रीति-रिवाजों के सम्बन्ध मे कभी २ कुछ कह डालते थे। कुछ बातें दिल मे बैठ गईं, कुछ विचारों की जड़ें मन मे जमने लगीं। धीरे धीरे विचार अकुरित होने लगे, मस्तिष्क उन पर गहन मनन करने लगा, फिर उन विचारों ने लेख का रूप धारण कर लिया। समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में लेख लिखे। उन्हें पसन्द किया गया तो शौक बढ़ गया। तब इस विषय पर लिखने लिखाने का सिलसिला बढ़ने लगा।

विचारों और लिखने लिखाने ने जीवन में कुछ आदर्श बना दिये। मैंने इन अनावश्यक एव अनुचित बधनों से छुटकारा पाने का निश्चय कर लिया, बुरे रीति-रिवाजों को त्यागने की भावना ने अभिलाषा का रूप धारण कर लिया। एक सुगम, सरल एव सादे विवाह का प्रयोग किया। बहनों ने इस प्रयोग मे मेरा साथ दिया,

विचार करें, और फिर इन्हें मलियामेट करने के लिये विद्रोह का झंडा खड़ा कर दें। एक भयंकर तूफान से ही समाज का जीर्ण-शीर्ण ढाँचा गिरकर फिर उसका नया भव्य भवन खड़ा हो सकेगा।

सियाने समझदार दम्पति ही मिल-जुल कर कुरीतियों पर आक्रमण कर सकते हैं। कोई भी साथी अकेला रीतियों के बन्धनों को नहीं तोड़ सकता। रीतियों का सम्बन्ध घरेलू जीवन से सामूहिक रूप मे होता है। सफलता तभी मिलेगी जब दोनों साथी परस्पर मिलकर प्रयत्न करेंगे।

स्त्रियाँ रीति रिवाजों को सम्भाल कर रखने के लिये जिम्मेदार हैं। इन रीति रिवाजों से छुटकारा पाने के लिये स्त्री जाति को बहुत प्रयत्न एवं उद्यम करना पड़ेगा। विशेष करके प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री का यह परम कर्तव्य और आदर्श होना चाहिये कि वह रीति रिवाजों के बन्धनों से छुटकारा पाकर एक सुन्दर, मधुर, स्नेहपूर्ण, आनन्ददायक गृहस्थी की नींव रखे।

विद्रोह का झंडा खड़ा किये बिना हम इस भयानक दासता से मुक्त नहीं हो सकते। हर घर में, हर गाँव में, हर शहर मे, हर जिले और हर प्रान्त में—अर्थात् देश के कोने कोने मे—एक महा-विकराल आँधी-तूफ़ान की भाँति एक प्रबल, महाशक्तिशाली आन्दोलन चलाकर इन बुरे रीति रिवाजों को जड़ से उखाड़ फेंकने की आज सर्वोपरि आवश्यकता है।

—जगदीश सिंह

पहला भाग

दुखदायक रस्में

विवाह की खुशी—नये कपडे, भड़कीले सूट, नये से नये आभूषण, पलग-पीढे, बर्तन, कपडे, दरी, दहेज, भाजियाँ, मिठाइयाँ, हलुवा, पूरी, साग भाजियाँ, लड्डू, मट्ठिया, नारियल, छुहारे, बाजे, गाजे, आतिशबाजी, चहल पहल, सत्कार, बधाइया, मान-सम्मान सब कुछ !

फिर वही तुनतुनी और वही राग। वही ढर्रा !! गृहस्थ के जञ्जाल, घर के झमेले, देवरानियों जेठानियों की लडाइयाँ, नन्द भौजाइयों के वाग्युद्ध, सास बहुओं की गालिया, कुटुम्बियों की बोलिया, पिता-पुत्र का मन-मुटाव, भाइ-भाइयों के झगडे, खाने पीने का समय, बच्चों का रोना पीटना, कपडे-लत्ते का प्रश्न, घर की चिन्ताएँ, न खाने का सुख, न घूमने फिरने का सुख, न सोने का समय न बैठने का अवकाश, सगे सम्बन्धियों व गली मुहल्ले मे भाजी, शगन, पान-सुपारी, फल मिठाई, बच्चों के जन्म पर बधाइया, विवाह की बधाइया, बीमारों की पूछताछ, मरने पर विलाप, पल्ले, रोना-पीटना, बुलाना, चलाना !

यह है हमारा गृहस्थ, झूठी खुशिया, दिखावे का आदर सत्कार, कृत्रिम बधाइया, झूठमूठ की सहानुभूति, सगे-सम्बन्धिया के वैर, प्रियजनों के अन्याय, अपनों का अत्याचार— यह है हमारा भाई चारा !!

रिश्ते-नाते

माता पिता को लडकी के उत्पन्न होते ही उसके दहेज की चिन्ता प्रारम्भ हो जाती है, और लडके के पैदा होते ही वे बडे चाव से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगते हैं जब उनके घर में बहू आवेगी। हिन्दुस्तानियों के जन्म-दिन के उपरान्त दूसरा महत्व पूर्ण दिन विवाह का दिन होता है। जन्म से लेकर विवाह तक के समय को हम कुछ भी महत्व नहीं देते, हमारे विचारानुसार बच्चे का जन्म ही विवाह के लिये होता है, इस लिये बच्चे के जन्म दिन से ही उसके विवाह के दिन की प्रतीक्षा और विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। कई बार तो ऐसा भी होता है कि दो सहेलियाँ आपस में यह प्रण कर लेती हैं कि यदि एक के घर लडकी होगी और दूसरी के घर लड़का तो वे दोनों का विवाह कर देंगी—अर्थात् बच्चे के जन्म से पहले ही उसका सम्बन्ध निश्चित कर दिया जाता है, परन्तु ऐसी बात कभी-कभी ही होती है।

हमारे यहाँ रिश्ते दो प्रकार के होते हैं —

१ अटा सटा   २ कन्यादान

प्रथम विवाह की रीति इस प्रकार है कि एक घर के लोग अपनी कन्या का विवाह दूसरे घर के पुत्र के साथ कर देते हैं तथा दूसरे घर की कन्या का विवाह अपने पुत्र से करते हैं। यह

रीति तभी सम्भव है जबकि दोनों घरों में एक-एक पुत्र तथा एक एक कन्या हो। इस रीति को अटा-सटा कहते हैं। यह रीति अधिकतर सीमा प्रात, पुठ्ठहार प्रात तथा अन्य थोडे ही प्रातों में थी, और अधिकतर गरीब लोगों मे ही प्रचलित है। दूसरी रीति कन्यादान की है जो अमीर, गरीब दोनों ही वर्गों में प्रचलित है। इसके अनुसार कन्या का 'दान' किया जाता है। इस रीति में अटा सटा रीति की भाति बदले मे कन्या लेने की प्रथा नहीं है। अटा-सटा को रीति तो एक व्यापार स्वरूप है—एक कन्या दी और एक ले ली। इस रीति के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस प्रकार के रिश्तों को हम लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते।

हमारे रिश्ते अधिकतर किसी के द्वारा ही होते हैं, कोई सज्जन मित्र अथवा सगा-सम्बन्धी बीच में पडकर रिश्ता कराता है। लडकी वाले, लड़के वाले के किसी मित्र अथवा सगे-सम्बन्धी के पास पहुँचते हैं और उस पर जोर देते हैं कि वह रिश्ता करा दे। लडके वाले विवश हो अजीब दुविधा में फँस जाते हैं। यदि अस्वीकार करते हैं तो रिश्ता लाने वाले के साथ सारी आयु के लिये वैमनस्य हो जाता है। इस लिये जब भी कोई ऐसा मित्र अथवा सगा-सम्बन्धी बीच में पड़ जाता है जिसके कहने को अस्वीकार करना कठिन हो तो विवश होकर लड़के वालों को 'हा' ही करनी पडती है।

इन रिश्ते लड़की और लडके के घर वालों को देखकर करते

हैं। इस बात को खोज की जाती है कि लडके या लड़की के माता पिता की जायदाद कितनी है, कोई घर बार है या नहीं, माता पिता के स्वभाव, व्यवहार आदि का पता लगाया जाता है, भाई बहनों के विषय मे पूछ-ताछ की जाती है। लडके और लड़की के विषय में तो केवल इतना ही पता करते हैं कि वह अन्धे काने तो नहीं हैं। इससे अधिक कुछ पूछ-ताछ करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती।

हम लड़के-लड़कियों का शीघ्र ही कहीं सम्बन्ध निश्चित करने की कोशिश करते हैं। लडका भले ही अभी पढ़ता हो, या कोई काम धन्धा सीखता हो, अथवा किसी नौकरी की खोज मे हो, परन्तु लड़की वाले शीघ्रता ही करने की सोचते हैं जिससे कहीं ऐसा न हो कि लड़का हाथ से निकल जाए। लड़की का तो सारा प्रश्न आयु का ही होता है, जहाँ उसने आयु के चौदह पन्द्रह साल पूरे किये कि माता पिता को उसका विवाह शीघ्र कर देने की चिन्ता सताने लगती है। कहीं ऐसा न हो जाए कि लडकी की आयु बडी हो जाय और उसे कोई स्वीकार न करे। इसी डर से जब कन्या १२ वर्ष पूरे कर लेती है तो दो तीन वर्षों के अन्दर ही अन्दर उसका कहीं न कहीं विवाह कर दिया जाता है। अभी भी कई प्रदेशों में इससे भी छोटी आयु वाले लडके और लडकियों का विवाह कर देने की प्रथा है।

पर क्या यह सब कुछ ठीक है ? क्या हम पूर्ण सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और इन रीतियों में कोई परिवर्तन करने की

आवश्यकता नहीं ? यदि इसका अनुमान लगाना हो तो समाचार-पत्र पढ़कर देखिए, कहीं लडका आत्महत्या कर लेता है क्योंकि उसके माता पिता ने उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध कर दिया था। कहीं लड़की अपने आप को आग लगाकर जल मरती है क्योंकि अपने पति के साथ या सास के साथ उसका निभाव नहीं होता। कहीं लडका अपनी पत्नी को घर मे नहीं रखता और पत्नी अपने खर्च के लिये उसके ऊपर दावा करती फिरती है। कहीं लडके की माता पिता के साथ नहीं बनती और वह पत्नी को साथ लेकर घर से निकल जाता है। इन बातों के और भी कई कारण हो सकते हैं परन्तु सबसे बडा कारण हमारे रिश्ते करने का ढग है। हम लडके लड़कियों का विवाह नहीं करते, वरन समधियों का विवाह करते हैं। हम केवल यही देखते हैं कि लडके या लडकी के माता पिता सज्जन व्यक्ति हैं या नहीं, या उनकी जायदाद कितनी है। हमने कभी यह बात नहीं सोची कि लड़के-लड़की की परस्पर निभेगी या नहीं। हम केवल यही सोचते हैं कि समधियों की आपस में निभेगी या नहीं। हमें लडके-लड़की के दिल का कुछ पता नहीं होता और न हमने कभी पता लगाने का प्रयत्न ही किया है। न ही हम उनके गुण-अवगुण देखते ह। हमारा यही विचार है कि लड़के लड़किया मा-बाप के पास ही जाती हैं। माता पिता अपने बच्चों का विवाह अपने विचारानुसार करते हैं, उन्हें इस बात का कुछ पता नहीं होता कि उनके बच्चों के विचार किस ओर जा रहे हैं। इसका अन्त प्रतिदिन की

लडाइया, झगडे, दावे तथा आत्महत्या के रूप मे सामने आता है।

अभी तक माता पिता को अपने बच्चों के विवाह करने के पूर्ण अधिकार मिले हुए हैं, परन्तु अब समय बदल रहा है। हमें अपना कर्तव्य पहचानना चाहिये, कहीं ऐसा न हो कि हमारे लड़के-लड़किया हमारे वश से बिल्कुल बाहर हो जावें। हमें अपने लड़के-लडकियों का भला सोचना चाहिए, उनका रिश्ता उनकी सम्मति तथा सहमति के बिना नहीं करना चाहिये। हम बहुत बार धन देख कर फिसल जाते हैं, या तथाकथित आदर-मान मे फँस जाते हैं, पर जिन दोनों को अपना सारा आगामी जीवन व्यतीत करना है उनको पूछते तक नहीं। यही कारण है कि आजकल के नवयुवक 'बिगडे' हुए हैं और कहना नहीं मानते। अभी भी समय है कि हम अपने आपको बदल ले, अन्यथा आने वाले समय मे लडकिया भी हमारे हाथों से निकल जाएगी। समय के वेग को रोक सकने में हम समर्थ नहीं। यदि हम अपने लड़के-लड़किया को "तुम्हारा क्या अधिकार है बोलने का ? तुम्हें अभी इन सभी बातों की समझ नहीं।" ऐसा कह कर चुप करने का प्रयत्न करेंगे, तो यह हमारी गलती होगी। यदि हम ऐसा समझते हैं कि उन्हें अभी इन बातों की समझ नहीं, तो यह अच्छा है कि अभी उनका रिश्ता ही न करें।

यह हमारी बडी भारी भूल है कि हम लडके का रिश्ता उसी समय कर देते हैं जबकि वह अभी बेरोजगार होता है, या अभी उसकी शिक्षा भी समाप्त नहीं होती। कोई नहीं कह सकता कि

लड़का बड़ा होकर क्या बनेगा। एक ओर हो सकता है कि वह खाली डंडे ही बजाता फिरे, तथा दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि वह किसी बड़ी पदवी पर पहुँच जावे। परन्तु रिश्ता होने के पश्चात् लड़के के प्रति दोनों ओर ही शंका बनी रहती है, यदि कोई रोजगार न मिले, तो वह स्वयं भी दुखित रहता है और वह लड़की भी जो उसकी पत्नी है। यदि उस लड़के को कोई बड़ी पदवी मिल जावे तो क्या पता है कि वह अपनी मंगेतर से विवाह ही न करे और शायद अपनी पदवी के अनुसार किसी बड़े घर की लड़की से विवाह करना चाहे। इसलिये अच्छा यही है कि जब तक लड़का स्वयं कमाई न करने लगे तब तक उसका रिश्ता कहीं न किया जावे।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है हम बहुत सारे रिश्ते केवल किसी बीच में पड़े व्यक्ति का मान रखने के लिये ही करते हैं, चाहे हम कई कारणों से उसे स्वीकार न करना चाहें। प्रयत्न तो हम यह करते हैं कि जो हितैषी मित्र या सम्बन्धी रिश्ता कराने के लिये बीच में पड़ा है उसे नाराज न करें, परन्तु ऐसा करने से हम अपने पुत्र या पुत्री का सारा जीवन तबाह कर देते हैं। उसके लिये हम यह उक्ति कह देते हैं कि "घर आई लक्ष्मी लौटाई नहीं जाती"। साथ ही बड़े २ गुरु, अवतार और पैगम्बरों को इस उक्ति की पुष्टि के उदाहरण स्वरूप रख देते हैं। पुराने समय की रीतियां आजकल से बिल्कुल भिन्न थीं। हमें हर बात समय के अनुसार ही सोचनी चाहिये। हमारा दिल भले ही इस बात को

गवाही देता हो कि उक्त स्थान से आए रिश्ते को हमे स्वीकार नहीं करना चाहिये, परन्तु केवल किसी बीच में पडे व्यक्ति की नाराजगी से बचने के लिये या "घर आई लक्ष्मी" के विचार से यदि हम उस रिश्ते को स्वीकार करते हैं तो यह हमारी कितनी बडी भूल है। यदि हम अपना और अपनी सतान का सुख चाहते हैं तो हमे ये सारी निरर्थक बातें त्यागनी पडेंगी।

हम एक और दलील भी देते हैं कि सयोग तो ईश्वर ही के द्वारा होते हैं। यदि किसी को अच्छी पत्नी या अच्छी पुत्र-वधु न मिले तो हम कहते हैं कि ईश्वर के ऊपर तो किसी का जोर चलता नहीं, सयोग तो जहा ईश्वर ने करना था वहाँ होना था। यह कितनी निरर्थक दलील है। इस प्रकार तो हम यह भी कह सकते हैं कि आजकल के लडके-लडकियों को बिगाडा भी ईश्वर ने ही है। इसके लिये कोई दुख मनाने की आवश्यकता नहीं। हमारी ही भूलों तथा अन्यायों ने लड़के-लडकियों को बिगाड़ा है और जब तक हम अपने रिश्ते करने की रीति और ढग न बदलेंगे तब तक हमारा घरेलू जीवन शात और सुखमय नहीं हो सकता। यह नित्य का दुःख और क्लेष कैसे दूर हो सकते हैं जबकि हम रिश्ते करते समय नींव ही इन्हीं की रखते हैं।

दहेज

हमारे रिश्ते-नाते की प्रथाओं में आजकल जो सब से अधिक दुखदायी है वह है दहेज की प्रथा। जब से कन्या का जन्म होता है तभी से उसके माता पिता को उसके दान दहेज की चिंता लग जाती है। माता उसके दहेज के लिये धीरे २ कपड़े इत्यादि तैयार करती रहती है। जिस बेचारी माँ की तीन चार लड़कियां हों, उसको तो न दिन को सुख न रात को चैन। हर समय लड़कियों की ही चिन्ता लगी रहती है, यदि कहीं से अच्छे कपड़े हाथ लग गये तो उन्हें सम्भाल कर रख दिया, यदि कहीं अच्छे नए नमूने के बर्तन देखे तो वह खरीद कर रख छोड़े। आभूषण भी लड़की के लिए नए २ डिजाइनों के साथ ही साथ तैयार करती रहती है। इस तरह कन्या के जन्म से लेकर उसके विवाह तक उसका दहेज धीरे २ तैयार होता रहता है।

इस प्रथा का क्या कारण था? यह क्यों बनाई गई थी? हमारे बहुत सारे रीति रिवाजों का सम्बन्ध हमारे पैतृक सम्पत्ति के कानून से है। दहेज की रीति भी इसी से सम्बन्धित जान पड़ती है, क्योंकि कन्याओं को वैधानिक रूप से माता पिता की सम्पत्ति के ऊपर कोई अधिकार नहीं, उनको इसके बदले दहेज दिया जाता है। कन्याओं और बहनों को सभी अवसरों पर देने की

प्रथा इसी कारण है कि उन्हें सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं दिया जाता।

परन्तु हमने इस दहेज प्रथा को क्या बना रक्खा है ? जिन घरों को आज कल की हवा नहीं लगी है वहाँ यह होता है कि सारे का सारा दहेज लड़की की ससुराल वाले हथिया लेते हैं और वही कपड़े, लत्ते, बर्तन, भाढे आदि उसकी नन्दों के विवाह में दहेज के रूप मे दे दिये जाते है। बनाता कोई है और उसका प्रयोग कोई करता है। यदि लड़के की नौकरी एव काम-काज घर से बाहर किसी दूसरे नगर मे लग जाता है अथवा लड़के का कुछ रौन होता है तो उसकी माँ वहू के दहेज मे से थोडी बहुत वस्तुएँ लड़के को दे देती है, दूसरे शब्दों में बहू को अपने दहेज में से थोड़ी बहुत वस्तुएँ मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

जिन घरों को आज-कल की हवा लग चुकी है वहाँ यह हाल है कि लड़का कहता है कि में वहाँ विवाह कराऊँगा जहाँ मुझे खूब माल मिलेगा। कार, रेडियो, सोफा-सैट, डिनर-सैट, नक़द रुपया, तथा अन्य कई वस्तुओं की वे आशा करते हैं। लड़कों को तो छोड दीजिए, उनके माँ बाप भी ऐसी ही आशाएँ बाधे बैठे रहते हैं।

लडकी का दहेज सास, ससुर के पास आता है अथवा पति के। हमने दहेज को एक लाटरी समझ छोडा है, अर्थात् पुत्र की पढाई आदि पर चाहे कितना ही खर्च करते चले जाओ जब उसका विवाह होगा तो सारी अगली पिछली कसरें पूरी करली जाएँगी।

हैदराबाद (सिन्ध) के हिन्दुओं मे एक साहित्यिक आमिल थे जो बड़ी ऊँची जाति के समझे जाते हैं। उनकी विद्या बुद्धि की बड़ी ख्याति है, परन्तु उनके अन्दर दहेज की प्रथा का इतने बुरे ढँग से पालन किया जाता है कि लड़कियों के लिये घर मिलने कठिन हो गये हैं। उनके नवयुवक अच्छी ऊँची शिक्षा प्राप्त करते हैं, विलायत तक भी पढ़ते हैं, परन्तु जब विवाह का समय आता है तो जो व्यक्ति सबसे अधिक रुपया देता है उसकी लड़की के साथ उस लड़के का विवाह हो जाता है। इसका परिणाम यह है कि तीस तीस वर्ष की लडकियाँ कँवारी बैठी रहती हैं, माँ-बाप के पास न पन्द्रह-बीस हजार रुपया देने के लिए होता है न लडकी ब्याही जाती है। कुछ वर्ष हुए यहाँ लडकियों ने कुछ हिम्मत की थी और यह घोषणा करदी थी कि हम उन लडकों के साथ विवाह नहीं करेंगी जो दहेज माँगेंगे। यदि आज-कल जैसी हालत कुछ और दिन रही तो वह समय दूर नहीं जब कि हमारे देश के कोने-कोने में यही स्थिति हो जावेगी।

जिस प्रथा का वास्तविक ध्येय हम छोड़ बैठे हैं उस पर चलना बड़ी भारी भूल है। दहेज का अर्थ था माँ-बाप की सम्पत्ति में लड़की का हिस्सा, परन्तु जब यह लड़की के पास रहता ही नहीं तो फिर इसे देने से लाभ ही क्या है। यह तो उसके सास-ससुर को तथा पति को परमात्मा आकाश फाड़ कर बप्फे फैंक देता है जिनके लिए वे चिरकाल से तरस रहे होते हैं। फिर जो दहेज माँ बाप की जायदाद का ही भाग है, तो जिन लोगों के पास कोई

जायदाद नहीं वे दहेज क्यों दें ? पर नहीं, दहेज देना आवश्यक है। "लड़कियों को खाली नहीं भेजना चाहिये"। चाहे घर मे खाने को कुछ न हो परन्तु दहेज देना आवश्यक है अन्यथा नाक कट जायेगी, लोग क्या कहेंगे, "लडकी को कुछ भी नहीं दिया" बस ये विचार हमे मार रहे हैं और हमारा घर पट हो रहा है।

जो लडके धन के लोभ में किसी जगह विवाह करते हैं और जिनका किसी घर की लड़की से विवाह करने में वास्तविक ध्येय ही यह होता है कि वहाँ से खूब धन मिलेगा क्या उनका विवाहित जीवन कभी सुखी हो सकता है ? जिस पति और पत्नी का मेल ही पैसे ने कराया है वहाँ भला प्रेम कहाँ निवास कर सकता है ? कितने दुख की बात है कि हमने विवाह को भी पैसे का ही एक खेल बना रक्खा है। हमारा गृहस्थ जीवन इसी लिए सुखी नहीं हो सकता चूंकि हमने इसकी नीव अनुचित नियमों पर रक्खी हुई है।

दहेज के कपडे भी लडकियाँ स्वय तैयार करती हैं। उन्हें स्वयं ही चादरे, दुपट्टे, गिलाफ आदि सीने व तैयार करने पड़ते हैं। मातायें लड़कियों से बलपूर्वक उनके दहेज के कपडे तैयार कराती हैं, यदि वे न करें तो धमका कर एव मार-कूट कर भी उनसे यह काम कराया जाता है। इसी प्रकार तैयार हुए इन कपड़ों मे से कुछ कपडे उनके हिस्से के अनुसार उनके दहेज में दे दिये जाते हैं, शेष कपडे माँ अपने घर के लिये तथा अन्य लड़कियों के लिये रख लेती है। लड़कियों का ध्यान सदा इस दहेज की तैयारी

में हो तो कोशिश की जाती है कि जैसे भी हो रिश्ता कर दिया जावे, अन्यथा शायद कोई और लडका बहुत दिनों तक न मिले, और यदि लड़की बहुत बड़ी हो जाये तो हो सकता है कि फिर कोई भी लड़का न मिले। इसी प्रकार की कई बातें होती हैं जिनसे विवश होकर हम अपनी शक्ति से अधिक दहेज देते हैं तथा लड़के की और भी माँगें स्वीकार करते हैं। बडे लोगों की तो पूछिये ही मत, वे तो अपने बडे होने की शान में ही हजारों रुपये दहेज में लगा छोडते हैं। उनकी तो यही अभिलाषा होती है कि लोग वाह-वाह करते हुए उठें, चाहे इतना रुपया व्यय करने का सामर्थ्य उनके अदर न हो। वे तो लोगों की वाह वाह पर मरते हैं। यह हाल है हमारे रिश्ते-नाते-सम्बधी रीति रिवाजों का। वे बने थे किस ध्येय से और हम उन पर चल रहे हैं किन कारणों से। दहेज था तो माता पिता की जायदाद में लड़की का हिस्सा, परन्तु हमने इसको क्या से क्या बना दिया है। यह ठीक है कि हमारे विरासत के कानून बदलने के लिए बडे प्रचार और आदोलन की आवश्यकता है परन्तु यह स्पष्ट है कि हम इन कुरीतियों को स्वय छोड़ सकते हैं और कानून हमें इस बात से नहीं रोकता। जिन लोगों मे हिम्मत है वे इन व्यर्थ के ढकोसलों और कुरीतियों को छोड दें। लोग देखा देखी अपने आप इनके पीछे चलने लगेंगे। सुधार सदा इसी प्रकार होते आये हैं। सरकारी कानून कभी सुधार नहीं कर सकते। वे तो केवल लोगों की सहायता करने के लिये होते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या लड़कियों को दहेज भी न दिया जाय ? कई लोग इस तरह करते हैं कि लड़की के नाम रुपया बैंक में जमा करा देते हैं और पासबुक को उसके हाथ में दे देते हैं, परन्तु यह भी एक कठिन-सी बात है। दहेज में दी गई चीजें काफी कुछ दिखाई देती हैं परन्तु यदि उनके स्थान पर उतना रुपया दिया जाय तो बहुत थोड़ा लगता है। इस तरह माता पिता को नकद रुपया बहुत देना पड़ता है। लड़के वाले भी इस बात पर बहुत क्रोध करते हैं कि रुपया लड़की के नाम क्यों जमा कराया गया है।

इन रीति रिवाजों का सुधार इस प्रकार नहीं होगा, इलाज यही है कि इन रिवाजों को बिल्कुल ही छोड़ दिया जाए और दहेज देना बिल्कुल ही बन्द कर दिया जाए। माता पिता की जायदाद का हिस्सा एक समान लड़कों और लड़कियों को दे दिया जाय। विवाह की प्रथा को हम लोग जितना सीधा-सादा बनाएगे उतने ही सुखी रहेंगे।

बरात और मिलनी

हमारे बहुत सारे रीति-रिवाज ऐसे हैं जिनका असली अभिप्राय किसी को पता ही नहीं, और हम आँखें बंद करके लकीर के फकीर बने जा रहे हैं। बरात की रीति भी उनमें से एक है। कई लोग कहते हैं कि पहले समय में मार्ग संकटपूर्ण होते थे और साधारणतया लोग पैदल ही यात्रा करते थे, और जब विवाह होना होता था तो वर के बहुत सारे सगे सम्बंधी उसका साथ देते थे जिससे मार्ग में उसे कोई कठिनाई न आ पडे। कई कहते हैं कि बराती एक प्रकार के गवाह समझे जाते थे। बरात की प्रथा उस समय से प्रचलित है जब से कि लोग छोटे-छोटे दल बनाकर रहते थे। विवाह करने के लिये दूसरे पक्ष की कन्या को अपने साथियों की सहायता से फतह करके लेना होता था, योजनानुसार आक्रमण किया जाता था। घोडे तथा हथियार उसी समय की यादगारें हैं। फिर यह केवल एक कोरी प्रथा ही रह गई। बरात और मिलनी जान-पहचान का भी एक साधन बन गया। वर पक्ष वालों का, कन्या पक्ष के लोगों के साथ परिचय हो जाता था और एक दूसरे के साथ मिल-जुल लेते थे।

पर क्या आजकल भी इसी आशय से बरात और मिलनी की प्रथाएँ प्रचलित हैं ? हमने बरात को एक ओर तो

सम्बधियों की भाजी का रूप दे दिया है तथा दूसरी ओर अपनी मान प्रतिष्ठा दर्शाने का साधन बना दिया है। जिसकी बरात में अधिक आदमी हों, हाथी, घोड़ों, मोटरों की बड़ी बहार हो, बैंड बाजा बड़ा शानदार हो, तो लोग देखकर कहते हैं—'वाह-वाह किसी बड़े सम्पन्न व्यक्ति का विवाह है'—केवल इतना ही कहलाने मात्र के लिये यह सारा आडम्बर प्रदर्शित किया जाता है। यदि कन्या पक्ष के लोग कहें कि बरात में ४० आदमी ले आइये, तो वर पक्ष के लोग कहते हैं कि हमारे सम्बधी बहुत हैं, हमारी बरात मे सौ सवा सौ लोग होंगे।

बरात में कौन-कौन निमन्त्रित हों? यह बड़ा कठिन प्रश्न है जिसको बड़े बूढ़े ही हल कर सकते हैं। अपने सम्बधी और अपने गाँव के लोग जिनके साथ भाजी का लेनदेन हो, जिनके विवाह में तुम्हारे घर से कोई गया हो, तथा कुछ अन्य मित्रों को बरात मे निमन्त्रित किया जाता है। बरात मे जाने वाले भी कई-कई महीने पहले से ही तैयारिया करते हैं, नए-नए कपड़े आदि तैयार कराते हैं। जिनको तुम बरात में निमन्त्रित करो उनके घर से यदि कोई न आवे तो भविष्य में तुम्हें भी उनके किसी विवाह में सम्मिलित नहीं होना। हमारे भाई-चारे के कानून कितने सख्त हैं।

कन्या पक्ष की ओर से बरात की खूब आवभगत की जाती है— मिठाई, खीर, हलुवा, पूरियाँ आदि बनती हैं, फिरनी आदि तथा कई प्रकार के अंग्रेजी भोजन बनाए जाते हैं, चाय पार्टियाँ होती

हैं, एक दो रात तो बडे राजसी ठाठ होते हैं। अन्त में परिणाम क्या होता है? १०० में से ६० बराती तो बीमार हो जाते हैं, किसी को हैजा, किसी को पेट दर्द, किसी को कुछ का कुछ हो जाता है। फिर कहते हैं, "विवाह में तो ऐसा हुआ ही करता है। यह कोई विशेष बात नहीं।" अच्छी विवाह प्रथाएँ हैं हमारी।

मिलनी के भी वैसे ही नियम हैं जैसे विवाह के। उसमें नजदीकी रिश्तेदारों को ले जाया जाता है। कुछ समय पहले तो आमतौर पर मिलनी पीछे जाया करती थी, परन्तु अब तो प्राय मिलनी को बरात के साथ ले जाते हैं। मिलनी की सख्या भी दिनों दिन बढ़ ही रही है।

पहले बरातों को दो रात ठहराने का रिवाज था—क्योंकि जो लोग लम्बी यात्रा करके पहुँचते थे उन्हें थकान दूर करने के लिये भी तो कुछ समय चाहिये था। आजकल बहुत से लोग तो एक रात ही बरात को ठहराते हैं परन्तु बहुत से लोग अब भी दो रात ही बरात को ठहराते हैं।

अब हमे इस बात पर विचार करना है कि बरात और मिलनी के क्या लाभ हैं। जिस आधार पर बरात की परिपाटी प्रारभ की गई थी अब वह व्यर्थ हो गई है। अत अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। बरात के पक्ष में दूसरी युक्ति यह दी जाती है कि इस के द्वारा आपस म जान पहचान हो जाती है। परन्तु यह बात भी नहीं हो पाती। कन्या-पक्ष वाले बरातियों की आव भगत में इतने अधिक व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हे उनसे मिलने-

जुलने का अवसर ही नहीं मिलता। वर, उसके पिता और भाई बन्धुओं को तो कन्या-पक्ष वालों ने देखा हुआ ही होता है। उनसे जान पहचान पैदा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। शेष बरातियों के साथ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, मिलने-जुलने का अवसर नहीं मिलता। जिसके घर एक दम सौ डेढ़-सौ व्यक्ति आजाएँ वह सब से कैसे परिचय प्राप्त कर सकता है। इसलिए यह बात नितान्त स्पष्ट है कि जिन बातों पर बरात के रिवाज की नींव रखी गई थी वे आज पूरी नहीं हो रहीं। आजकल तो इस रिवाज का पालन अपनी बड़ाई के लिए किया जा रहा है। हमे सोचना चाहिये कि यह फजूल खर्ची कहाँ तक उचित है। हमारे सामाजिक रिवाज किस तरह आरभ हुए थे, वे हमे आज कहा ले जा रहे है और इनके क्या-क्या बुरे परिणाम निकल रहे हैं। इन बातों पर विचार करते समय हमे एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि भाई चारे सम्बन्धी रीति रिवाजों का सुधार सदा धनवान व्यक्तियों की ओर से आरभ होता है। साधारण लोग सुधार का काम आरभ नहीं कर सकते। यदि वे सुधार करने का साहस करेंगे भी तो लोग यही कहेंगे कि सामर्थ्य नहीं थी इसलिए इन्होंने ऐसा किया। थोडी सामर्थ्य वाले लोग अमीरों की रीस मे वह काम कर बैठते हैं कि पीढ़ियों तक उसका ऋण नहीं उतरता। शादी विवाह सम्बन्धी बुरे रिवाजों के दुष्परिणाम हर नगर, हर गाव और गली-कूचे मे देखे जा सकते हैं। इस समय जब कि भारत के कोने कोने और घर घर मे गरीबी ने डेरे डाले हुए हैं, इस बात

हैं, एक दो रात तो बडे राजसी ठाठ होते हैं। अन्त मे परिणाम क्या होता है ? १०० में से ६० बराती तो बीमार हो जाते हैं, किसी को हैजा, किसी को पेट दर्द, किसी को कुछ का कुछ हो जाता है। फिर कहते हैं, "विवाह में तो ऐसा हुआ ही करता है। यह कोई विशेष बात नहीं।" अच्छी विवाह प्रथाएँ हैं हमारी!

मिलनी के भी वैसे ही नियम हैं जैसे विवाह के। उसमें नज़दीकी रिश्तेदारों को ले जाया जाता है। कुछ समय पहले तो आमतौर पर मिलनी पीछे जाया करती थी, परन्तु अब तो प्राय मिलनी को बरात के साथ ले जाते हैं। मिलनी की संख्या भी दिनों दिन बढ़ ही रही है।

पहले बरातों को दो रात ठहराने का रिवाज था—क्योंकि जो लोग लम्बी यात्रा करके पहुँचते थे उन्हें थकान दूर करने के लिये भी तो कुछ समय चाहिये था। आजकल बहुत से लोग तो एक रात ही बरात को ठहराते हैं परन्तु बहुत से लोग अब भी दो रात ही बरात को ठहराते हैं।

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि बरात और मिलनी के क्या लाभ हैं। जिस आधार पर बरात की परिपाटी प्रारभ की गई थी अब वह व्यर्थ हो गई है। अत अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। बरात के पक्ष मे दूसरी युक्ति यह दी जाती है कि इस के द्वारा आपस में जान पहचान हो जाती है। परन्तु यह बात भी नहीं हो पाती। कन्या-पक्ष वाले बरातियों की आव भगत मे इतने अधिक व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें उनसे मिलने-

जुलने का अवसर ही नहीं मिलता। वर, उसके पिता और भाई बन्धुओं को तो कन्या-पक्ष वालों ने देखा हुआ ही होता है। उनसे जान-पहचान पैदा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। शेष बरातियों के साथ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, मिलने-जुलने का अवसर नहीं मिलता। जिसके घर एक दम सौ डेढ़-सौ व्यक्ति आजाएँ वह सब से कैसे परिचय प्राप्त कर सकता है। इसलिए यह बात नितान्त स्पष्ट है कि जिन बातों पर बरात के रिवाज की नींव रखी गई थीं वे आज पूरी नहीं हो रहीं। आजकल तो इस रिवाज का पालन अपनी बड़ाई के लिए किया जा रहा है। हमें सोचना चाहिये कि यह फजूल खर्ची कहाँ तक उचित है। हमारे सामाजिक रिवाज किस तरह आरभ हुए थे, वे हमे आज कहा ले जा रहे हैं और इनके क्या-क्या बुरे परिणाम निकल रहे हैं। इन बातों पर विचार करते समय हमें एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि भाई-चारे सम्बन्धी रीति रिवाजों का सुधार सदा धनवान व्यक्तियों की ओर से आरभ होता है। साधारण लोग सुधार का काम आरभ नहीं कर सकते। यदि वे सुधार करने का साहस करेंगे भी तो लोग यही कहेंगे कि सामर्थ्य नहीं थी इसलिए इन्होंने ऐसा किया। थोड़ी सामर्थ्य वाले लोग अमीरों की रीस मे वह काम कर बैठते हैं कि पीढ़ियों तक उसका ऋण नहीं उतरता। शादी विवाह सम्बन्धी बुरे रिवाजों के दुष्परिणाम हर नगर, हर गाव और गली-कूचे में देखे जा सकते हैं। इस समय जब कि भारत के कोने कोने और घर घर मे गरीबी ने डेरे डाले हुए हैं, इस बात

की बड़ी आवश्यकता है कि हम लोग अपने भाई-चारे के नियमों को बदलें। जब धनवान लोग रीति-रिवाजों को बदलेंगे तो शेष लोग भी उन्हें आसानी से बदल देंगे। अनेकों व्यक्ति रिवाजों का पालन करते रहते हैं—चाहे वे मन में इनके विरुद्ध ही क्यों न हों, क्योंकि बिरादरी के सामने 'नाक' रखनी बहुत आवश्यक है।

जो रुपया पैसा विवाह शादियों के अनावश्यक रीति रिवाजों पर व्यय किया जाता है वह अन्य कई अच्छे अच्छे कामों में लगाया जा सकता है।

विवाह में लड़का तथा उसके पिता (व माता), और साथ में एक आध भाई-बहन जाने से भी विवाह सम्पन्न हो सकता है और बड़ी अच्छी तरह हो सकता है।

लेन-देन

हमारे भाई चारा सम्बन्धी कई ऐसे रिवाज हैं जिन्हें देखकर हँसी आती है। छोटी-छोटी बातों में भी हम रीति रिवाजों से बधे हुए हैं और उनके उल्लघन करने का साहस हम मे नहीं है। स्त्रियों के अपनी पड़ौसनों के साथ वर्ताव को ही ले लो। इसी में आपको एक पूरा विधान मिल जाएगा। यदि पड़ौसन के घर कुछ 'भाजी' आदि भेजनी होगी तो वह केवल तभी भेजी जाएगी जबकि उसके यहा से पहले कभी कुछ आया हुआ होगा। यदि आप पहल करना चाहते हैं तो एक-दो बार भेज सकते हैं। यदि उसके बाद उनके यहा से कुछ न आवे तो बस भविष्य मे उनके यहा भेजना बन्द हो जाएगा। यदि आप किसी पड़ौसी के घर जाए और वह आपके यहा न आए तो बस फिर उसके यहा आपका जाना भी बन्द। यदि आप किसी के घर जाए और वह आपकी कुछ खातिर करे तो जब वह आपके यहा आए तो आप भी उसकी लस्सी-पानी से खातिर कर दें। स्त्रिया इस तरह आस-पड़ौस में भाई-चारा प्रारम्भ करती हैं। 'भाजी' लेने-देने तथा एक-दूसरे के घर आने-जाने को दो पैड़िया चढ़ लेने के बाद प्रेम बढ़ता जाता है। इसके बाद तीसरी पैड़ी 'शगन' की है। यदि पड़ौस की कोई बहन बेटी विदा होकर जा रही हो तो मिश्री

के कूजे तथा बादाम आदि का 'शगन' और साथ में रुपया दो रुपया भी दिया जाता है। परन्तु यदि आपके घर से बहन-बेटी विदा हो रही हो और कोई पड़ौसन आपके यहां 'शगन' देने न आए तो बस 'भाजी' बन्द हो जाती है।

बच्चे के जन्म पर लड्डू बांटने पड़ेंगे। जिनसे अधिक मेल मिलाप है उनके घर अधिक और जिनके घर थोड़ा है उनके घर थोड़े। उसके बाद उन सब लोगों का आपके घर में एकत्रित होना और 'शगन' देना परम आवश्यक है।

साराश यह कि जिनसे आपका 'शगन' और 'भाजी' आदि का लेन देन है उनके यहां अवसर आते ही आपने उनसे जो कुछ पहले लिया हुआ है वह सब कुछ उतार दो। सिर पर शगन और भाजियों का ऋण नहीं रहना चाहिये।

यह है हमारा पास पड़ौस के साथ भाईचारा। सगे सम्बन्धियों के साथ भी इसी तरह होता है। चाहे आप अपने गांव-नगर से कितनी भी दूर क्यों न हों, सगे सम्बन्धियों की भाजी तो भुगतानी ही पड़ती है। जो किसी बहन बेटी की सुसराल में जाओ तो वहां बच्चों से लेकर बड़ों तक सब को भेंट दो। खास-खास रिश्तेदारों के साथ खास-खास लेन-देन करना पड़ता है। बहन बेटी को खूब रुपये देने पड़ते हैं। यदि बहन-बेटी मायके में आए तो उसे बहुत कुछ देना पड़ता है। आप से लेने के अधिकारी सम्बन्धियों की सूची बहुत लम्बी है। बहन, बेटी, उनके बाल बच्चे, उनकी देवरानी, जेठानी और उनके बाल बच्चे तथा सास,

ससुर, पति आदि सबकी भेंट-पूजा करनी पड़ती है। साराश यह कि दर्जनों सम्बन्धी ऐसे हैं जिनको या तो कुछ देना पड़ता है या जिनसे कुछ लेना होता है। जीवन-पर्यन्त यह लेन-देन चलता रहता है।

एक और रिवाज का प्रचलन है। लोग एक-दूसरे के यहाँ विवाहों में 'न्यौता' डालते हैं। 'न्यौते' का अर्थ है कुछ रुपये। यदि किसी व्यक्ति ने आपके यहाँ विवाह मे न्यौता दिया हुआ है और उसके यहाँ कोई विवाह होने वाला है तो आपको भी उसके यहा न्यौता डालना पडेगा। यदि आप यह लेन देन उसके साथ भविष्य मे भी रखना चाहते हैं तो जितने रुपये उसने न्यौते के आपको दिये हुए हैं उससे कुछ अधिक रुपया आपको उसके यहाँ देना पडेगा। यदि आप न्यौते का लेन देन किसी व्यक्ति के साथ बन्द करना चाहते हैं तो बराबर का रुपया देकर बन्द कर सकते हैं।

इस प्रकार के हैं हमारे भाई चारे के रिवाज। यह भाई-चारा केवल दो बातों की नींव पर खडा हुआ है—बदला और 'नाक'। जो आपके साथ जिस तरह बरते आप भी उसके साथ उसी तरह बरतें। जो कोई आपके यहा 'भाजी' भेजे, शगन डाले, न्यौता डाले या बरात में शामिल हो, आप भी उसका उसी तरह बदला चुकाए। दूसरी चिन्ता हमें बिरादरी, पडौस और सगे सम्बन्धियों के सामने अपनी 'नाक' रखने की रहती है। हम जो कुछ बहन बेटियों, सम्बन्धियों और मिलने-जुलने वालों को देते

अतिथि-सत्कार

भारतीय नारियां कुछ तो वैसे ही कोई काम करने के योग्य नहीं हैं, और कुछ हमारे सामाजिक रिवाजों और रूढियों ने उन्हें इतना दबाया हुआ है कि वे बेचारी सिर ही नहीं उठा सकतीं। हमने स्त्रियों को केवल-मात्र रोटी बनाने की मशीन समझ रखा है—मानो उनका संसार रसोई घर तक ही सीमित है। हमारे घरों में रसोई का काम लगभग सारा दिन चलता रहता है। स्त्रियां ज्यों सवेरे उठकर भोजन बनाने के काम पर जुटती हैं तो सोने के समय तक उसी काम में लगी रहती हैं। इसका एक कारण तो यह है कि हमारे यहां यह नियम नहीं है कि सब घर वाले किसी एक [illegible] करें। सब लोग अलग अलग समय [illegible] सवेरे ६ बजे भोज[illegible] तो [illegible] प्रकार शाम के [illegible] रात के १० बजे [illegible]

अतिथि [illegible]

भूखे रहेंगे, पर खाना घर पर ही आकर खाएगे—दो बजे की कोई चिन्ता नहीं। हमे यदि किसी सम्बन्धी या मित्र के यहा जाना हो और गाड़ी चाहे रात के दस बजे पहुँचती हो, खाना हम वहीं पहुँचकर खाएगे। हम सभी—पढे अनपढ़—इसी रीति का पालन करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि एक तो वैसे ही हमारी 'घरवालिया' सारा दिन भोजन बनाने के चक्कर में फसी रहती हैं और दूसरे आए गए सज्जन और भी पूरी तरह उन्हें रसोई घर की बन्दिनी बनाए रखते हैं।

किसी भी योरोपियन तथा अमरीकी राष्ट्रों मे इस प्रकार के ऊट-पटाग रिवाज नहीं हैं। यदि कोई योरुपियन अपने मा-बाप के घर भी जा रहा हो और रास्ते मे भोजन का समय हो जाए तो वह रास्ते मे ही भोजन कर लेगा और घर पहुँच कर भोजन करने की प्रतीक्षा मे भूखा नहीं रहेगा। हमारे यहा भी यदि प्रत्येक घर में भोजन करने का समय निश्चित् हो जाए तो स्त्रियों का भार कुछ हल्का हो जाए।

परन्तु हमारा अतिथि सत्कार उपरोक्त बात तक ही सीमित नहीं है। यदि कोई अतिथि हमारे घर आवे तो जब तक हम हलुवा, खीर, पूरी और कई तरह की साग-भाजिया आदि उसके लिये न बनावें तो वह समझता है कि उसकी आव भगत ही नहीं हुई। चाहे दिखावे के लिये वह कह भी दे कि "ओह! यह तो आपने बड़ा तकल्लुफ किया! आपने क्यों इतनी तकलीफ उठाई ?" परन्तु हमें भी पता है और उसे भी पता है

कि इतनी खातिर न की जाती तो उसके मन में क्या विचार और भावनाएँ उत्पन्न होतीं । इसीलिये यदि किसी के यहा अतिथि आ जाय तो वह समझता है कि उसके लिये तो मानो पहाड़ आ गिरा । उसकी जान को एक सकट खड़ा हो जाता है। इसका यह परिणाम है कि अतिथियों को देखकर हमारा मन प्रसन्न नहीं होता । अतिथियों को आया देखकर हम घबरा उठते हैं और परेशान हो जाते हैं ।

जब कोई अतिथि आता है तो हम उसे भोजन के लिये पूछते हैं । वह दिखावा-मात्र के लिये कहता है, "जी, रहने दीजिये, मुझे तो बिल्कुल भूख नहीं है ।" हम उसे एक-दो बार और कहते हैं, फिर भी वह यही कहता है, "कोई खास भूख तो है नहीं ।" परन्तु हम भी जानते हैं और वह अतिथि भी जानता है कि यह सब झूठ है । भूख से चाहे उसके प्राण निकल रहे हों और वह आया भी इसी आशा से हो कि 'घर' चलकर भोजन करेंगे, परन्तु हमारे देश मे एक दो बार ना-नुकर करने का भी अत्यन्त आवश्यक रिवाज है । और इस रिवाज का पालन भी उतना ही आवश्यक है जितना अन्य सामाजिक रिवाजों एव रूढियों का ।

इस आव-भगत और सेवा-सत्कार के रिवाज से हमारे और अतिथि के बीच स्नेह बधन उत्पन्न होने नहीं पाता वरन् हमारे लिये 'अतिथि' हौवा बन जाते हैं और हम उनके दर्शन से भी घबराते हैं ।

जाति-भेद

विविध जातिया कब बनीं और इनके बनने का क्या तात्पर्य था, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस विषय पर बड़े-बड़े विद्वानों और अनुसधान-कर्त्ताओं में मत भेद है और अनेकों मत एव धारणाए इस प्रश्न पर प्रचलित हैं। हाँ, इस मत पर सब सहमत हैं कि पहले-पहल चार बड़ी २ जातियाँ बनी थीं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन चार श्रेणियों को चार प्रकार के अलग २ काम सौंपे गए थे। उस समय यह बँटवारा बहुत लाभदायक था और चारों जातियों के लोग अपने २ काम मे बड़े प्रसन्न एव सुखी थे। परन्तु आजकल तो तौना ही भली। यदि जातियों की गणना करने लगें तो उनका कोई अन्त ही नहीं। प्रत्येक बड़ी जाति के सैंकड़ों हजारों भेद उपभेद हो गए हैं। इन छोटी २ उपजातियों की न तो किसी ने गणना की है और न ही कोई गणना करने का साहस कर सकता है। साहस हो भी कैसे? भारत के प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक बड़ी श्रेणी की अलग २ उपजातियाँ और अलग २ गोत्र आदि हैं। कई जगह तो यहाँ तक देखने में आया है कि जिले जिले और तहसील-तहसील में उनमे बहुत अन्तर हो गया है।

प्रश्न यह होता है कि ये छोटी २ जातियाँ क्यों और कैसे

बनीं ? यह प्रश्न वास्तव में बडा जटिल और उलझावदार है। बडे बडे विद्वान् अब तक इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके हैं। हाँ, इतनी बात अवश्य स्पष्ट है कि बहुत सी जातियाँ किसी कुटुम्ब विशेष के व्यक्तियों की बनी हुई हैं और अन्य बहुत सी जातियों की नींव में भिन्न २ काम धन्धे एव व्यापार आदि हैं। यदि किसी वश के किसी पूर्वज का काम बजाजे का था तो उस वंश के लोगों का 'अल्ल' ही 'बजाज' पड गया। मुग़ल शासन-काल में 'क़ानू गो' के पद पर काम करने वालों के वश की उपजाति 'क़ानू गो' बन गई।

विशेष २ काम धन्धों आदि के कारण कुछ जातियाँ एव अल्ल बने—यह बात तो प्रकट है, परन्तु कितनी ही अन्य ऐसी जातियाँ हैं जिनका प्रारम्भ किसी और कारण से हुआ। कई तो किसी वश के किसी बड़े विख्यात व्यक्ति के नाम से ही बन गई प्रतीत होती हैं। कई जातियों के नाम इतने ऊट-पटांग हैं कि समझ में ही नहीं आता कि ये नाम क्यों और किस तरह रखे गये।

जिन जातियों की नींव काम धन्धों पर रखी गई है उनमें भी बहुत मत भेद है क्योंकि एक तो प्रत्येक प्रान्त में हर काम धन्धे के आदमी मिल जाते हैं और वे सब एक ही वश के नहीं होते। दूसरे काम धन्धों से अल्ल बन जाने का रिवाज किसी एक प्रान्त में प्रारम्भ होता है और फिर देखा देखी साथ वाले प्रान्तों में भी प्रारम्भ हो जाता है। वशों से बनी हुई जातियाँ एक भी नाम की कई जातियाँ हो सकती हैं क्योंकि हमारे देश मे मनुष्यों

के ऐसे नाम नहीं हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के अलग अलग हों। एक नाम के कितने ही मनुष्य मिल सकते हैं। एक जाति के सारे व्यक्ति किसी एक वश के नहीं हो सकते, न ही उनकी नींव किसी एक ही बात पर रखी गई प्रतीत होती है।

देखना यह है कि जातियों के जो वास्तविक नियम एव धर्म बतलाये जाते हैं क्या वे आजकल उनका पालन कर रहे हैं ? क्या ब्राह्मण ईश्वर पूजादि का काम करते हैं ? क्या क्षत्रिय लोग शस्त्र धारण करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर दीन-हीनों की रक्षा करते हैं ? क्या वैश्य कार-व्यवहार और व्यापार करते हैं ? तथा क्या शूद्र सेवा का काम करते हैं ? यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पता लगेगा कि चारों जातियों में से यदि कोई जाति आज तक अपने नियत धधे द्वारा रोटी खाती है तो वह केवल शूद्र जाति है। शेष सब जातियों के ढग बदल गये हैं। घाटा भी बेचारी इस शूद्र जाति के पल्ले पडा है। हम देखते हैं कि आजकल जातियाँ विशेष विशेष मतलब के लिए काम आती हैं। श्राद्धों, व्रतों तथा त्यौहारों आदि पर ब्राह्मण लोग खूब पूजे जाते हैं। यदि किसी को किसी प्रकार की पूजा आदि करानी हो तो इन्हीं की पूछ-ताछ होती है, परन्तु इस का यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक ब्राह्मण को वेद पाठ आदि का ज्ञान होता है, अथवा वे बडे विद्वान् होते हैं। सच तो यह है कि आजकल के सैंकड़ों ब्राह्मणों में से कोई एक आध ही ऐसा होता है जो थोडी-बहुत सस्कृत जानता हो और कुछ वेद मत्र जिसने

याद कर रखे हों। विद्वान् ब्राह्मण तो ढूँढ़े से कोई एक आध ही मिलता है। उनके मुकाबले में कई गैर ब्राह्मण बड़े विद्वान् होते हैं। निर्वाह करने के लिये अनेकों ब्राह्मण सैंकड़ों अन्य काम धंधे करने लग गये हैं। परन्तु फिर भी उनमें जाति-अभिमान नहीं जाता। स्टेशन पर पानी पिलाने का काम करने वाला ब्राह्मण भी बड़े गर्व से कहेगा—मैं ब्राह्मण हूँ। रसोई बनाने वाले ब्राह्मण अपने साथ वही काम करने वाले गैर ब्राह्मणों को घृणा की दृष्टि से देखेगा और अपने को ऊँचा समझेगा। इसी प्रकार वे और काम करते हुए भी उनका जातीय गर्व कम नहीं होता।

यही हाल शेष जातियों का है। सब जातियाँ किसी को अपने से ऊँची और किसी को नीची समझती हैं। यह ऊँच-नीच का भाव भिन्न-भिन्न जातियों में ही नहीं है, वरन एक जाति के भिन्न भिन्न गोत्रों में भी उतना ही तीव्र है। नीची कहे जाने वाली एव 'दलित' जातियों में भी आपस में एक-दूसरे के प्रति यह ऊँच-नीच का भाव विद्यमान है। जातियों का एक-दूसरी के साथ भयकर भेद भाव ही नहीं वरन् वैर भाव तक भी विद्यमान है।

यह जाति भेद रिश्ते नाते करते समय बड़े उग्र रूप मे हमारे सामने आ उपस्थित होता है। यह परम आवश्यक है कि हमारे लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध जाति विशेष में हों। उस सीमा से बाहर चाहे कितना ही अच्छा रिश्ता उपलब्ध हो, कितनी ही अच्छी, स्वस्थ, सुन्दर पढ़ी लिखी लड़की हो और कितना ही प्रतिष्ठित उसका घराना हो, परन्तु हम अपने लड़के का रिश्ता

उससे कदापि नहीं करेंगे यदि वह हमारी जाति की नहीं है। यही बात लडकों के सम्बन्ध मे है। अपनी जाति में उचित लडका या लड़की न मिलने से चाहे रिश्ता वर्षों तक न होने पाए, यही नहीं चाहे लडका या लडकी का रिश्ता बिल्कुल ही न हो सके और वे आयु-पर्यन्त कँवारे बैठे रहें, परन्तु यह नहीं हो सकता कि बाहर की जाति में रिश्ता कर दिया जावे—चाहे बाहर कोई अच्छा एव उचित लडका या लडकी आसानी से ही क्यों न उपलब्ध हो। यदि कोई व्यक्ति साहस दिखाकर अपनी जाति से बाहर रिश्ता कर भी ले तो स्त्रियाँ उसका जीना दूभर कर देती हैं। इन्हें तो दूसरी जातियों के लोग मानो मनुष्य ही नहीं लगते। युक्तियों एव बहस की वहाँ गु जाइश ही नहीं है। इनका तो एक ही उत्तर है—"जो बडे करते आए वही रीति ठीक है। हमे भी वही करना चाहिये।" अन्य किसी बात में वे चाहे पूर्वजों की बात का पालन करें या न करें, परन्तु जाति भेद, जाति विशप मे रिश्ते-नाते करने तथा विवाह मे रीति रिवाजों के पालन मे वे अवश्य लकीर की फकीर बनी रहना पसन्द करती हैं। हमारी पड़दादी ने साड़ियों के दर्शन भी न किये हों, परन्तु हमारे घरों मे आजकल सब स्त्रिया साडियाँ पहनती हैं और न जाने कितने-कितने फैशन करती हैं। परन्तु जहा जात पात का प्रश्न आ जाए वहाँ वे पूर्वजों की दुहाई देने लग जाती हैं।

स्त्रियों का सामाजिक व्यवहार ऐसा दृढ होता है कि यदि कोई स्त्री किसी सामाजिक रूढि, परम्परा एव रीति रिवाज से थोडी-सी

भी इधर-उधर हो जाए तो आस पड़ौस और रिश्ते की स्त्रि
उसका जीना दूभर कर देती है। काश ! स्त्रियों का यह भाईचा
किसी अच्छे काम मे लगता !

जातियों के सम्बन्ध में हमने एक और नया रिवाज अप
लिया है। अंग्रेजों की देखा देखी हम अपने नामों के साथ जा
लगाने लगे हैं। और अग्रेजों की भांति ही अपने नाम के प्रारम्भि
अक्षर अपनी जाति के नाम से पहले लिखकर हमने अप
नाम रखने की प्रथा स्वीकार करली है। के० एम० मलहोत्र
डी० सी० बजाज—इस ढग पर नाम रखने का आजकल आ
रिवाज है। अंग्रेजों अथवा अन्य योरुपियन लोगों में तो ना
वश पर रखे जाते हैं। परन्तु हमने अपनी ही प्रथा निकाली है
हम अपनी जाति एव उपजाति को अपने नाम के साथ लगाक
ही 'साहब' बनने की कोशिश करते हैं और अपने को 'मलहोत्र
साहब' 'भल्ला साहब' 'अग्रवाल साहब' आदि नामों से पुका
जाने के बड़े शौकीन हैं। कई बार तो हम 'साहब' बनने की धु
मे अपनी जाति का नाम ऐसा बिगाड़ देते हैं कि सुनने या पढ़
वाले को यह अंग्रेजी शब्द एव नाम लगने लगे।

जातियों का आजकल लाभ कोई नहीं है। यदि है तो उनसे
हानि ही हानि है। रिश्ते-नातों मे इस प्रथा से अड़चन पड़त
है और देश में एकता का भाव उत्पन्न नहीं हो पाता। जातियों
के ऊँच-नीच के भाव ने हम में झूठा गर्व अथवा अनावश्यक
लघुता का भाव भर दिया है। 'शूद्रों' को हमने कुत्तों से भी बुरे

दशा बना छोड़ी है। हम उनके साथ इस तरह का व्यवहार करते हैं मानो वे मनुष्य ही नहीं हैं। यदि मिस मेओ जैसे व्यक्ति हमें हमारा वास्तविक रूप दिखाएँ तो हम तड़प उठते हैं, परन्तु अपने घर की गन्दगी को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते।

प्रत्येक जाति मे प्रत्येक प्रकार के लोग मिलते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि अमुक जाति के लोगों मे अमुक स्वभाव या गुण है। यदि किसी जाति विशेष मे कोई विशेष गुण या स्वभाव की बात ठीक थी भी तो वह पुराने युग में होगी—आजकल तो इसमें लेश मात्र भी सचाई नहीं है।

जब तक हम इस जाति प्रथा की जड़ों मे तेल नहीं देंगे तब तक हमारे बहुत से दु ख दूर नहीं होंगे। हममें से जिन लोगों में साहस है वे जाति भेद की परवाह न करते हुए रिश्ते-नाते करें। बदनाम हुए बिना सुधार नहीं हो सकता। आज यदि हम सामाजिक कुरीतियों को दूर करने मे साहस दिखाएंगे तो आने वाली सन्ततियाँ आसानी से हमारा अनुसरण कर सकेंगी।

पर्दा

पर्दे (घूंघट) का रिवाज कब से प्रारम्भ हुआ तथा इसका क्या उद्देश्य था—इस सम्बंध में अधिक विचार की आवश्यकता नहीं है। प्रारम्भ होने का चाहे कुछ भी कारण और उद्देश्य हो, परन्तु जिस रूप में यह आजकल प्रचलित है यह मूर्खता का एक चिह्न है। हम पर्दा अपनों के लिये प्रयुक्त करते हैं, परायों से पर्दा करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। रिश्तेदार और पति के कुटुम्बी ही घूंघट के अधिकारी हैं, अन्य सब के सामने पूरी स्वतन्त्रता है। गली में फेरी वाले आएँ, छाबड़ी वाले आएँ, भिखमगे, फकीर आदि आएँ, ज्योतिषी, जोगी, सन्यासी, 'गोशाला' वाले, 'अनाथालय' वाले आएँ, ब्राह्मण एवं मौलवी आएँ, मदारी और अन्य तमाशे वाले आएँ, स्त्रियों को कोई परवाह नहीं परन्तु यदि जेठ, ससुर अथवा कोई अन्य बड़ा दूर से भी दिखाई दे जाए तो तुरन्त घूंघट निकाल लिया जाता है। यह पर्दा है या मजाक़!

हमारे यहाँ घूंघट केवल विवाहित स्त्रियों के लिये है। कंवारियों के लिये इसका विधान नहीं है। वे वैसे ही परायों से छिपाई जाती हैं। हां, भारत के कई प्रदेशों में रिवाज है कि वहां कंवारी लड़कियाँ सिर खुले रखती हैं।

आमतौर पर भारत में सिर खुला रखना निर्लज्जता की निशानी समझी जाती है। यदि बाल सवारते ? सहसा कोई पुरुष आ निकले तो स्त्री तुरन्त सिर पर कपडा लेने का करती है। यदि पास मे कोई कपडा उपलब्ध न हो तो वे सिर पर हाथ ही रख लेती हैं। जिस दिन से लडकी का विवाह हो जाता है उस दिन से उसके लिये घू घट निकालना आवश्यक हो जाता है। नव विवाहिता तो कुछ दिनों तक अपने पति के सामने भी घू घट निकालती है। माल छ: महीने के पश्चात् उन्हें कुछ स्वतत्रता मिलती है। परन्तु बड़ों के सामने तो आयु-पर्यन्त घू घट निकालना पडता है। यदि वेध्यानी अथवा बेहोशी में भी कभी उनके सामने घू घट निकलने से रह जाए तो जब उन्हें इस बात का ज्ञान होता है तो वे पानी पानी हो जाती हैं और कहती हैं—"हाय ! हाय !! वे क्या कहेंगे ? इतनी निर्लज्ज हो गई !"

गली-बाजार में जाते हुए पति का कोई मित्र मिल जाए तो घू घट निकालकर उसका आदर किया जाता है। ससुराल में गली मुहल्ले के सब व्यक्तियों से घू घट निकाला जाता है। परन्तु मायके में किसी से पर्दा नहीं किया जाता।

ये हैं हमारे यहाँ घू घट पर्दे के नियम। इनका उल्लंघन करना बड़ा भारी अपराध समझा जाता है। हमारा समाज इस अपराध को बड़ी घृणा से देखता है।

परन्तु हमारी आँखों के सामने क्या हो रहा है ? दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई है ! कहाँ तो गज-गज लम्बा घू घट और कहाँ

यह हाल कि सिर पर से कपड़ा बिल्कुल ही उड गया है। आजकल की फैशन-परस्त नारियां या तो सिर पर कपड़ा बिल्कुल रखती ही नहीं या नाम मात्र को कपडा डाल लेती हैं, परन्तु वह वास्तव में सिर पर नहीं वरन कधों पर पड़ा रहता है। रीति रिवाजों का अन्त यही हुआ करता है। रीति रिवाजों का प्रारम्भ समय की आवश्यकता के अनुसार हुआ करता है, परन्तु मानव इतना प्रतिक्रियावादी है कि जो भी प्रथाएँ एक बार पड जाएँ वह परिस्थिति बदलने पर भी उन्हें त्यागने के लिये तैयार नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि प्रथाएँ केवल मात्र लकीर बन जाती हैं—निर्जीव, निरर्थक, सारहीन। फिर कोई ऐसी हवा चलती है कि पुराने रिवाज जड़ से उखड जाते हैं और उनका निशान तक शेष नहीं रहता। कई बार यह भी होता है कि हम आग में से बचकर निकलते हैं परन्तु कुएँ में छलांग लगा बैठते हैं। सती का रिवाज गया तो साथ ही पतिव्रत धर्म भी जाता रहा। इसका यह अर्थ नहीं है कि पतिव्रत धर्म के लिये सती की प्रथा अनिवार्य है। तात्पर्य यह है कि जब ऐसा समय आ गया था कि सती की प्रथा केवल छायामात्र रह गई थी तो हमें चाहिये था कि समय की आवश्यकता को देखते हुए इसमें परिवर्तन कर देते। परन्तु हमने इस सम्बध मे कुछ नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि सती की प्रथा तो उठ गई पर साथ ही उसका आदर्श भी जाता रहा। यही हाल घूघट की प्रथा का हो रहा है। हमने उसके वास्तविक अर्थ एवं आवश्यकता को भुला दिया है—केवल

छाया को हम लोग पकडे बैठे हैं।

यह कैसा पर्दा है जो केवल अपनों से किया जाता है। परायों के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं। आजकल की परिस्थिति मे पर्दा बिल्कुल व्यर्थ है। जितनी जल्दी इसको समाप्त किया जा सके उतना ही अच्छा है। अब इस सम्बध में कोई विशेष युक्ति देने की भी आवश्यकता नहीं है। कोई भी समझदार स्त्री आजकल घू घट निकालना पसद नहीं करती। फैशन ने पहले ही इस पर तीव्र आक्रमण कर दिया है। कुछ वर्षों मे इसका निशान तक नहीं रहना। पुराने विचारों के लोग कहते हैं कि स्त्रिया वडी निर्लज्ज हो गई हैं। परन्तु वास्तविक बात यह है कि वे निर्लज्ज नहीं वरन् स्वतत्र हो गई हैं। पहले वे पुरुष के पजे मे फँसी हुई थीं अब अपने पॉव पर खड़ी हो गई हैं। जो थोडी-बहुत स्त्रिया अब भी घू घट निकालती हैं, उनमें से बहुत कम अपनी मर्जी से निकालती हैं। बहुत सी तो केवल बडों के डर से ही निकालती हैं। इस तरह के बन्धन आखिर कब तक रहेंगे ?

जन्म-मरण

हमारे समाज मे स्त्री का मूल्य सन्तान से है। सन्तान न हो तो स्त्री का जीवन दुखी समझा जाता है। पहली सन्तान का जन्म होने पर बड़ी खुशी मनाई जाती है, परन्तु शर्त यह है कि वह सन्तान लड़का हो। लड़की का जन्म होना तो दुर्भाग्य की बात समझी जाती है। इसलिये जन्म-सम्बन्धी सारे रीति रिवाजों का पालन लड़के के जन्म पर ही किया जाता है। लड्डू बाँटने, शगुन डालने, बालक की माता को रुपये, कपड़े देने आदि के कार्य पुत्र का जन्म होने पर ही किये जाते हैं। बालक के माता पिता का खर्च काफी होता है, परन्तु उगाही भी काफी हो जाती है। मायके वालों से, ससुराल वालों से, पति के मिलने जुलने वालों से, गली मुहल्ले वालों से तथा सगे-सम्बन्धियों आदि से—सब से—प्राप्ति होती है। और यह उगाही कौनसी एक दिन मे समाप्त हो जाती है, यह तो महीनों ही नहीं, वर्षों चलती रहती है।

यदि पुत्र के जन्म पर कुछ न किया जाए तो सब धिक्कारने लगते हैं। परन्तु यह न समझें कि बालक के माता पिता स्वयं कुछ नहीं करना चाहते। वे तो खुशी से फूले नहीं समाते। उन्हें आप ऐसे अवसरों पर अपनी शान दिखाने का चाव रहता है। इसीलिये हम देखते हैं कि दिनों दिन बच्चों से सम्बन्धित रीति रिवाज

बढ़ रहे हैं। लड़के के जन्म, उसके जन्म दिन, उसका नाम रखने, उसे अन्न खिलाना शुरू करने, मुंडन (अथवा केश गूंथने), विद्यारम्भ, कक्षाओं में चढ़ने, इत्यादि अनेक अवसरों पर आए दिन अनेकों प्रथाओं का चलन बढ़ने लगा है। ऐसे अवसरों पर धूम धाम करनी, मित्रों, सगे-सम्बन्धियों और बड़े-बड़े लोगों को एकत्रित करना, किसी न किसी प्रकार की पाठ-पूजा आदि करनी, पार्टी देनी, और फिर समाचार पत्रों में समाचार निकलवाना—इन्हीं बातों में हम लोग बड़ा गौरव समझते हैं। यही बातें करके हम लोग प्रसन्न होते हैं। हमारी खुशियाँ और बढ़ाइयाँ भी विलक्षण प्रकार की हैं। लोगों से वाह-वाह सुनने के लिये हम लोग कितने ही आडम्बर रचते हैं। कितनी फिजूल रस्मों का जाल दिन प्रतिदिन फैलता जा रहा है। बालक के जन्म की खुशी तो अपनी जगह ठीक है, परन्तु इन नित नई बढ़ती हुई प्रथाओं ने लोगों का नाक मे दम कर रखा है।

लोग आप ही कुछ कम नहीं हैं, फिर दुनिया नहीं जीने देती। लड़का पैदा हो तो हीजड़े ही द्वार पर आकर डट जाते हैं, माँगने वालो, 'कमियों' आदि का ताता बध जाता है। आस पड़ौस की स्त्रियाँ घेरा डाल देती हैं। पाठशाला मे प्रवेश के लिये बच्चे को ले जाओ तो पहले मुंशी जी लड्डू माँगते हैं। ऐसी हालत में कोई इन फिजूल रस्मों को छोड़ना भी चाहे तो कैसे छोड सकता है? परन्तु जो लोग साहस दिखा सकते हैं उन्हें चाहिये कि वे भाई चारे एवं बिरादरी तथा सगे-सम्बन्धियों की परवाह न करके

तथा उपहास, घृणा, अथवा 'बदमाश' होने की परवाह न करके सुधार का कार्य करें और समाज को सही रास्ता दिखाए।

खुशी दिखावे की चीज़ नहीं है, यह तो मन का भाव होता है। दिखावे की खुशियाँ झूठी खुशियाँ होती हैं। ऐसी खुशियों से मन प्रसन्न नहीं होता। यही नहीं, बल्कि बाद में क्रोध और उलाहने की बहुत सी बातें निकलती हैं, और दुख उत्पन्न होता है। इन कारणों से वह क्षणिक खुशी भी लुप्त हो जाती है। एक और बात भी है। कोई भी व्यक्ति सब को खुश नहीं कर सकता। कोई न कोई व्यक्ति ऐसे अवसरों पर नाराज़ हो जाता है। क्या इसकी अपेक्षा यह अधिक अच्छा नहीं कि घर के ही लोग मिल कर खुशी मना लें। जहाँ दिखावे की खुशी है वहाँ हार्दिक आनन्द नहीं हो सकता।

हम लोग खाने-पीने और घूमने फिरने मे बहुत कम पैसा खर्च करते हैं क्योंकि हमारा बहुत मा रुपया इन निरर्थक रीति-रिवाजों पर नष्ट हो जाता है। कोई पैदा हो तो भी खर्च, कोई मरे तो भी खर्च। बिना पैसे के किसी की मृत्यु भी नहीं सम्भाली जा सकती। हमारे यहाँ के तो मुर्दों के लिये जलना दफ़न होना एक कठिन, खर्चीला काम है। कई ब्राह्मण, मुल्ला, प्रथी, तथा 'कर्मी' आदि ऐसे समय की प्रतीक्षा करते रहते हैं। हरिद्वार के पंडे हजार-हज़ार रुपया प्रतिदिन पैदा कर लेते हैं। परन्तु फिर भी जब ये इकट्ठे बैठकर आपस में बातें करते हैं तो कहते हैं—"कुछ नहीं जी, आजकल तो कोई कमाई ही नहीं होती। कोई हैज़ा, प्लेग

पडे तो वात वने ।" यही हाल अन्य जातियों के पुजारियों का है। हम किस भावना से प्रथाए पूरी करते हैं और रुपये खर्च करते हैं और वे लोग किस भावना से दान-दक्षिणा लेते हैं। उन लोगों ने वास्तव मे सव रीतियाँ अपने पेट के लिये घडी हुई हैं। हमारी भावनाओं और विश्वासों का वे लोग अनुचित लाभ उठाते हैं। वे अपने लाभ हानि की चिन्ता करते हैं, हमारी नहीं।

किसी की मृत्यु पर क्या खर्च नहीं होता ? अन्त-समय की प्रथाएँ, दान, फिर किरिया, फिर वरसी आदि कई आडम्बर हैं। यदि कोई वृद्ध मरता है तो और भी अधिक खर्च होता है। यदि हम ठडे दिल से विचार करें तो इनमें से वहुत सी प्रथाएँ विल्कुल व्यर्थ हैं। उनका लाभ केवल निकम्मे आदमियों एव मुफ्त-खोरों की सख्या वढाना तथा उन लोगों का पेट पालना है। काश ! यह रुपया तथा शक्ति किसी अच्छे काम मे खर्च हो !

शोक और विलाप

जन्म और विवाह के दिन के बाद हमारे जीवन में तीसरा महत्त्वपूर्ण दिन मृत्यु का दिन है। पहले दो दिन आनन्द के हैं और तीसरा शोक का। संसार के सभी देशों मे किसी के मरने पर शोक मनाया जाता है, मरने पर खुशी नहीं मनाई जाती। प्रत्येक देश, राष्ट्र एवं जाति मे शोक मनाने की अपनी २ अलग प्रथायें हैं, परन्तु रोना सब प्रथाओं मे शामिल है। हा, रोने के ढंग भिन्न भिन्न हैं। मृत्यु का समय ऐसा होता है कि कठोर से कठोर हृदय भी पिघल कर बह निकलता है।

हमारे यहाँ शोक सम्बधी प्रथाएँ भी निरर्थक प्रथाएँ मात्र बनकर रह गई हैं। ऐसे अवसरों पर जो विलाप किया जाता है, वह भी अधिकाश रूप में दिखावा होता है। हमारे विलाप, 'स्यापा' 'वैन' एवं रुदन केवल दुनिया को सुनाने के लिये किये जाते हैं। हम किसी के मरने पर जो कुछ करते हैं अपना नाक रखने के लिए करते हैं। सब रोना, पीटना झूठा और कृत्रिम होता है। हमारी सहानुभूति भी एक प्रकार की 'भाजी' है। अपनों को चाहे हम सच्चे हृदय से रोते हों परन्तु परायों का दुःख-दर्द बाटना तो देने-लेने की भाँति सामाजिक व्यवहार मात्र रह गया है। यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे किसी कुटुम्बी एवं सबधी की मृत्यु पर

शोक प्रगट करने आया हो तो तुम्हारा भी कर्तव्य है कि उसके यहा किसी के मरने पर जाओ, अन्यथा वह बुरा मान जायगा। यह बदला आने जाने तक ही सीमित नहीं है वरन् मृत्यु की सूचना देने के लिए जो चिट्ठियाँ लिखी जाती हैं उनमे भी यही हिसाब किताब रखा जाता है। यह है हमारी सहानुभूति और समवेदना का नगा रूप।

जब किसी का कोई मरता है अथवा किसी स्थान पर किसी सगे सम्बन्धी के मरने की चिट्ठी आती है तो उसी समय नाइन सब गली-मोहल्ले मे बुलावा देने चल पडती है। थोडी सी देर में सारा गली-मोहल्ला इकट्ठा हो जाता है पुरुष बाहर बैठ जाते हैं और स्त्रिया अन्दर बैठ जाती हैं। पुरुष साधारणतया चुपचाप ही बैठे रहते हैं। उनमें से जिन्हें रोना होता है वे थोडी देर ढाढ़ें मार-मार कर रो लेते हैं। शेप व्यक्तियों मे से जो आता जाता है, वह कुछ निश्चित से शब्द कहकर बैठ जाता है। लोग कहते हैं, "क्या कहें। परमात्मा की यही मर्जी थी।" इसी तरह धीरे धीरे सब लोग एकत्रित हो जाते हैं। फिर धीरे धीरे जो व्यक्ति मर गया है उसकी बातें छिड़ जाती हैं। उसकी बीमारी का तथा अन्त समय का हाल सुनाया जाता है। उसके गुणों का बखान होता है। सब उसके सबध में कुछ न कुछ कहते हैं। इस तरह कुछ देर तक बातें होती रहती हैं। फिर स्वर्गवासी के घर का बडा सब को कहता है, "आप लोगों को काम पर जाना होगा।" सब लोग उठकर जाने लग जाते हैं। इसी प्रकार सारा

दिन लोग आते रहते हैं और यही बातें दोहराई जाती हैं।

उधर स्त्रियों का ढग अलग ही होता है। उनका स्यापा ए भयानक एव रौद्र दृश्य उपस्थित करता है। स्त्रियाँ अपने शरी को बहुत बुरी तरह कूटती-पीटती हैं। वे छाती और माथे प दुहत्थड़ मारती हैं, अपने गालों पर थप्पड़ मारती हैं और बाल को नोचती हैं। अपने को कूटते हुए वे 'हाय, हाय!' श चिल्लाती हैं। पीटने और चिल्लाने की आवाजें इक निकाली जाती हैं। क्या मजाल जो तनिक भी अन्तर पड़ जाय यदि कोई स्त्री हाथ कुछ नरम मारे या आवाज हल्की निकाले साथ वाली स्त्रियाँ उसे धिक्कारती हैं। यदि आप कभी पजाब क स्यापा देखें तो आप आश्चर्य चकित हो जाएगे कि स्त्रिया सैनि परेड कहा से सीखती हैं। इतने एकसार हाथ पड़ते हैं कि कमा हो जाता है।

जब स्यापा हो चुकता है तो वे बैठकर 'पल्ला' लेती हैं औ बैन करती हैं। इसमें वे बडे तुक और लय के साथ रोती हैं औ मरने वाले के गुण बखान करती हैं। जब तक कोई पल्ला न छुडा स्त्री बैन करना नहीं छोड़ती। घर वालियों का पल्ला बाहर वाली छुडाती हैं और बाहर वालियों का घर वालियाँ। परन्तु एक बार के कहने पर कोई स्त्री पल्ला नहीं छोड़ती। हरेक को दो-तीन बार कहना पड़ता है। यदि एक ही बार के कहने पर कोई स्त्री पल्ला छोड़ दे तो अन्य स्त्रिया मौ बातें बनाती हैं—"हाय! हाय! उसे तो कहने भर की देर थी। जैसे यह प्रतीक्षा ही कर रही हो।"

इस तरह करते कराते सारा दिन बीत जाता है। फिर एक-दूसरी को कह सुनकर उठती उठाती हैं और अपने-अपने घरों को चली जाती हैं।

जिस दिन मृतक का शोक मनाया जाता है उस दिन उस घर मे रोटी-पानी का काम बन्द रहता है। आग तक भी नहीं जलाई जाती। बालकों को आस पड़ौस के लोग जबर्दस्ती दो चार ग्रास खिला जाते हैं। परन्तु बडे कुछ नहीं खा-पी सकते। परन्तु देखने मे यह आता है कि वे भी अंदर जाकर चोरी-छुप्पे खा-पी लेते हैं। अथवा पडौसियों के घरों से भोजन बनकर आता है और पडौसी उन्हें खाने के लिए विवश करते हैं। और वे ऊपर से तो ना ना करते रहते हैं, कहते रहते हैं, "कौन रोटी खाए? मन बिल्कुल नहीं मानता।" परन्तु थोडा बहुत भोजन कर ही लेते हैं। इस प्रथा का तात्पर्य यह होता है कि खाना अपने यहा न बने। खाना उस दिन पडौसियों के घरों से आने की भी एक आवश्यक प्रथा है। अपने घर मे खाना बन जाए तो लोग जीने भी न दें। स्त्रियों के वैन सुनकर ऐसा लगने लगता है मानो यह भी मरने वाले के साथ मरेंगी, परन्तु ऐसा नहीं है। स्त्रियों का तो यह नित्य प्रति का ही काम है। नित्य प्रति ही उन्हें आस पडौस में तथा मिलने-जुलने वाले और सगे सम्बन्धियों के यहा यह नाटक रचने जाना पड़ता है। वे रासधारियों की भाति अथवा सिनेमा अभि-नेत्रियों की भाति जब जी चाहे आँसू बहा डालती हैं या खिल खिला कर हँस पडती हैं। उन्हें अपने ऊपर इतना काबू होता है।

करें भी क्या, बेचारियों को यह सब सीखना पड़ता है। जिस स्त्री को रोना-पीटना या बैन करना न आता हो उसे सगे-सम्बन्धी और गली-मोहल्ले वाले जीने न दें। स्त्रियों के लिये यह सब से आवश्यक गुण एव कला है। इसके बिना भाईचारा नहीं निभ सकता।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस रोने-पीटने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पडता। सच तो यह है कि इस नित्यप्रति के रोने-पीटने के कारण स्त्रियों के स्वास्थ्य का सत्यानाश हो जाता है। वे चूकि नित्यप्रति यही कुछ करती रहती हैं इसीलिए वे थोडे ही दिनों में बूढ़ी हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त छोटे २ बच्चों के स्वास्थ्य पर भी इस प्रथा का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। जिन्हें नित्यप्रति छाती कूटनी हुई, उनके बच्चों ने तो उनका दूध पी कर आप ही बीमार होना हुआ। दूसरे देशों के सामने हम बड़ी डींग मारते हैं कि भारत वासी बड़े धार्मिक लोग हैं। क्या हमारा धर्म यही है कि आज तक हम ईश्वर की इच्छा के सामने झुकना नहीं सीखे और हम नित्य उसकी आज्ञा पर रोते-पीटते रहते हैं। सच बात तो यह है कि हम मरने वाले को नहीं रोते पीटते वरन् ईश्वर की आज्ञा को रोते-पीटते हैं। क्या हमारा धर्म हमे यही सिखाता है ?

हमारी सहानुभूति दिखावे की है। ऐसी सहानुभूति से क्या लाभ। हमारा क्रोध भी विलक्षण है। यदि किसी की मृत्यु पर कोई परिचित या सगा-सम्बन्धी न आवे तो हम लोग उससे बिगड़

बैठते हैं। यदि हमारा कोई सगा-सम्बन्धी नौकरी अथवा व्यापार मे हमसे बहुत दूर भी हो तो भी उसको अवश्य आना पडता है नहीं तो छुटकारा नहीं मिलता। यदि नौकरी वाले को छुट्टी न मिले तो हम लोग कह देते हैं, "यह सब बहाना है।" यदि कोई सम्बन्धी बहुत दूर गया हुआ हो और किसी के मरने के वर्ष-दो वर्ष याद आवे, तो आकर पहला काम पल्ला लेना होता है।

यह सब प्रथाएँ हार्दिक रूप से नहीं करते। इन सब से हम तग भी आये हुए हैं, परन्तु लोकाचार के सामने हम सब विवश हैं। लोकाचार के फँदे हम लोग तोड़ना चाहते हैं परन्तु साहस नहीं। यदि हम मे से कुछ साहसी लोग इन निरर्थक एव हानि कारक प्रथाओं को छोड दें तो अन्य लोग भी उन बातों को धीरे-धीरे छोड देंगे। इस तरह धीरे २ सुधार हो जायगा। यदि हम लोग यह आशा करें कि बुरी प्रथाओं को सब लोग एकदम छोड दें तो यह असम्भव है। लोकाचार-सम्बन्धी सुधार सदा धीरे २ और देखा देखी होता है।

करें भी क्या, बेचारियों को यह सब सीखना पड़ता है। जिस स्त्री को रोना-पीटना या बैन करना न आता हो उसे सगे-सम्बन्धी और गली-मोहल्ले वाले जीने न दें। स्त्रियों के लिये यह सब से आवश्यक गुण एवं कला है। इसके बिना भाईचारा नहीं निभ सकता।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस रोने-पीटने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सच तो यह है कि इस नित्यप्रति के रोने-पीटने के कारण स्त्रियों के स्वास्थ्य का सत्यानाश हो जाता है। वे चूंकि नित्यप्रति यही कुछ करती रहती हैं इसीलिए वे थोड़े ही दिनों में बूढ़ी हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त छोटे २ बच्चों के स्वास्थ्य पर भी इस प्रथा का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। जिन्हें नित्यप्रति छाती कूटनी हुई, उनके बच्चों ने तो उनका दूध पी कर आप ही बीमार होना हुआ। दूसरे देशों के सामने हम बड़ी डींग मारते हैं कि भारत-वासी बड़े धार्मिक लोग हैं। क्या हमारा धर्म यही है कि आज तक हम ईश्वर की इच्छा के सामने झुकना नहीं सीखे और हम नित्य उसकी आज्ञा पर रोते-पीटते रहते हैं। सच बात तो यह है कि हम मरने वाले को नहीं रोते पीटते वरन ईश्वर की आज्ञा को रोते-पीटते हैं। क्या हमारा धर्म हमें यही सिखाता है ?

हमारी सहानुभूति दिखावे की है। ऐसी सहानुभूति से क्या लाभ। हमारा क्रोध भी विलक्षण है। यदि किसी की मृत्यु पर कोई परिचित या सगा-सम्बन्धी न आवे तो हम लोग उससे बिगड़

बैठते हैं। यदि हमारा कोई सगा-सम्बन्धी नौकरी अथवा व्यापार में हमसे बहुत दूर भी हो तो भी उसको अवश्य आना पडता है नहीं तो छुटकारा नहीं मिलता। यदि नौकरी वाले को छुट्टी न मिले तो हम लोग कह देते हैं, "यह सब बहाना है।" यदि कोई सम्बन्धी बहुत दूर गया हुआ हो और किसी के मरने के वर्ष-दो-वर्ष बाद आवे, तो आकर पहला काम पल्ला लेना होता है।

यह सब प्रथाएँ हार्दिक रूप से नहीं करते। इन सब से हम तग भी आये हुए हैं, परन्तु लोकाचार के सामने हम सब विवश हैं। लोकाचार के फँदे हम लोग तोडना चाहते हैं परन्तु साहस नहीं। यदि हम में से कुछ साहसी लोग इन निरर्थक एव हानि कारक प्रथाओं को छोड दें तो अन्य लोग भी उन बातों को धीरे-धीरे छोड देंगे। इस तरह धीरे २ सुधार हो जायगा। यदि हम लोग यह आशा करें कि बुरी प्रथाओं को सब लोग एकदम छोड दें तो यह असम्भव है। लोकाचार-सम्बन्धी सुधार सदा धीरे २ और देखा देखी होता है।

दूसरा भाग

हमारे समाज में स्त्री का स्थान

पर्दे की क़ैद स्त्री के लिये पुरुष ने नियत की है।
घूंघट और बुर्का स्त्री के लिए पुरुष ने बनाए हैं।
घर की चार-दीवारी में स्त्री को पुरुष ही सीमित रखता है।
पराए लोगों से बात करने से स्त्री को पुरुष ही रोकता है।
यदि स्त्री पुरुष से मुँह छुपाती है तो पुरुष से डरते हुए।
स्त्री को नीच समझे जाने का कारण भी पुरुष ही है।
स्त्री के लिए सब नियम और क़ानून पुरुष ने बनाए हैं।
उत्तराधिकार का अधिकार स्त्री को पुरुष नहीं देता।
स्त्री की दासता और गिरावट की सारी ज़िम्मेदारी पुरुष पर है।

दयनीय दशा

किसी देश की सभ्यता देखने के लिये उस देश की स्त्रियों की दशा देखनी चाहिये। जिस देश की स्त्रियों की दशा खराब है, समझ लो कि वहाँ के लोगों को अभी समझ नहीं आई और उन्होंने अभी सभ्यता नहीं सीखी।

जब से इतिहास की साक्षी मिलती है, एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि कई शताब्दियों से भिन्न-भिन्न देशों मे स्त्रियों की स्वतन्त्रता का आदोलन चलता आ रहा है। किसी देश मे इस आदोलन ने पहले जोर पकड़ा और किसी में बाद मे। परन्तु धीरे धीरे जागे हुए देशों का आस-पास के देशों पर प्रभाव पड ही जाता है। अफ़गानिस्तान जैसे कट्टर देशों में भी यह लहर चल पडी है। स्त्री-जाति की स्वतन्त्रता के आदोलन का उद्देश्य केवल यह है कि स्त्री पुरुष के पजे से मुक्त हो और उसके जीवन में से दासता का अन्त हो जाए। इस उद्देश्य में स्त्री-जाति कहाँ तक सफल हुई है यह हमारे सामने है। भारत मे यह आदोलन अभी थोडे ही दिनों से प्रारम्भ हुआ है। अभी इसने विशेष बल नहीं पकडा है।

हम लोग पहले अधिक सुखी थे या अब—इस बात का निर्णय करना एक कठिन सा प्रश्न है। किसी शासन-काल मे शासक तो

सुखी होता है, परन्तु दास उसी समय तक सुखी रहता है जब तक उसे अपनी दासता का भान नहीं होता। जब उसके मन में यह विचार उत्पन्न हो जाता है कि यह दास है तो जब तक दासता की बेड़ियाँ नहीं कट जातीं तब तक दास दुखी और असतुष्ट ही रहता है। शासक के लिये ऐसा व्यक्ति राजद्रोही है— क्योंकि यह शासक की सत्ता को और उसके सुख को समाप्त करना चाहता है। परन्तु विद्रोही अपने अधिकार मागता है और इस बात को मानने से इन्कार करता है कि शासक को उस पर शासन करने का परमात्मा की ओर से अधिकार मिला हुआ है।

ठीक यही परिस्थिति स्त्रियों की है। शताब्दियों से पुरुष का शासन चला आ रहा है। अब यह अपनी सत्ता छिनती देखकर कई प्रकार की चालें चल रहा है। वे कहते हैं कि "स्त्री जाति स्वतन्त्र होकर कभी सुखी नहीं रह सकती। यह तो पुरुष की छत्र छाया के नीचे ही सुखी रह सकती है।" परन्तु स्त्री-जाति को स्वतन्त्रता प्राप्त करने की लगन लगी हुई है। वे अब पुरुष के किसी भी फदे में फँसने के लिये तैयार नहीं हैं।

यह लहर समस्त संसार मे चल रही है। न यह हमारे रोके रुक सकती है, न किसी और के प्रयत्न करने से रुक सकती है। इसमें स्त्री के सुख-दुख का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इस आन्दोलन का क्या परिणाम होगा—यह परमात्मा ही जानता है। परन्तु हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि हमारे देश में स्त्री जाति की दशा बड़ी दयनीय है।

यदि स्त्री पुत्री को जन्म देती है तो हमारे मतानुसार पहाड आ गिरता है। पुत्री का जन्म मन्द भाग्य की निशानी समझी जाती है। उसके जन्म पर न किसी ने आज तक लड्डू बाटे हैं, न किसी ने बधाई दी है। नाम-करण सस्कार भी नाम मात्र का किया जाता है। लडकी जहा चाहे फिरे, जिस हालत में चाहे रहे, कोई उसकी परवाह नहीं करता। यदि लडकी मर जाए तो दो आसू गिरा छोडे, बस छुट्टी हुई। यदि जीवित रही तो 'जो भाग्य में होगा वह ससुराल मे ले जायगी।' यदि वह बीमार हो जाती है तो किसी पडौसन एव बुढ़िया ने जो कुछ ऊट-पटाग बता दिया वह कर दिया। यदि वह ठीक हो गई तो खैर, नहीं तो 'परमात्मा की इच्छा।' यदि लडकी भूखी प्यासी है तो किसी को चिन्ता नहीं। यदि वह सर्दी मे ठिठुरती है तो किसी को परवाह नहीं।

इस तरह मरती पडती जब लडकी ७-८ वर्ष की हो जाती है तो उसके लिये घर के काम धधे करना आवश्यक हो जाता है। छोटे भाइयों को खिलाना घुमाना, बडों को भोजन-पानी आदि देना, आटा गूधने की कला सीखनी, घर मे झाडू देनी—इत्यादि अनेकों काम हैं जो उसे करने और सीखने पडते हैं। वह यदि छोटे भाई को खिला रही हो और बच्चा रो पडे तो उसे दो-चार गालिया सुननी पड़ जाती हैं।

थोड़ी और बडी होने पर रसोई का सारा काम तथा मकान की सफ़ाई उसके सुपुर्द कर दी जाती है। उसका कर्तव्य हो जाता

है कि सवेरे मुँह अन्धेरे उठे, दूध बिलोए, मक्खन निकाले, फिर झाड़ू लगाए, उसके बाद चूल्हे चौके में मोर्चा लगाए। फिर 'मर्दों' को लस्सी-पानी अथवा चाय दे और उसके बाद छोटे भाई-बहनों को नहला धुलाकर कपडे पहनाए। जब सब नहा धो चुकते हैं तब कहीं जाकर उस बेचारी की नहाने की बारी आती है। आटा गूंधना, बरतन माजना, रोटी बनाना, सब को खाना खिलाना, सीना पिरोना, चर्खा कातना, काढ़ना बुनना, कपडे धोना, फिर सायंकाल रात का भोजन पकाना, ये सब काम उसकी दिनचर्या में सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त आटा छानना, फटे कपडे सीना, दाल बीननी, मसाला कूटना आदि काम भी चलते रहते हैं। भोजन पहले घर के मर्द करते हैं, फिर बाल बच्चे, फिर स्त्रियाँ। तब जाकर कहीं बेचारी लडकी की बारी आती है। खाना खाकर उसे फिर काम पर जुटना पड़ता है—बर्तन माजने, बिस्तर बिछाने, छोटे बच्चों को सुलाना। वह घर मे सब से पहले उठती है और सब से बाद में सोती है।

बेचारी लड़कियों के इस तरह दिन कटते हैं। सारा दिन काम कर-करके थक-हार जाती हैं, उस पर उन्हें खाना भी ठीक तरह नहीं मिलता। दूध तो उन्हें छूना भी नसीब नहीं। न उन्हें अच्छे कपडे पहनने की इजाजत है। सब कुछ करते हुए भी उन्हें माता पिता और भाई भावजों की झिड़कियाँ ही मिलती हैं। यदि वह छोटे भाई को कुछ कह दे तो बस फिर तो बेचारी की शामत ही आ जाती है। उसे बुरी भली सैंकड़ों बातें सुननी पड़ती

हैं। यदि कोई काम तनिक देर से हो अथवा उसमें तनिक सी कोई गडबड हो जाए तो उस पर फिर गालियों की बौछार। यदि दुर्भाग्य-वश लडकी कभी दुखी एवं खिन्न होकर आगे से बोल पडे तो बस फिर तो उसकी खैर नहीं।

यह है हमारा बर्ताव लड़कियों के प्रति। वे तो वास्तव मे इस संसार मे नरक भोगती हैं। खाना पीना उनके लिये हराम। पहनना उनके लिये हराम। घूमने फिरने की उन्हें आज्ञा नहीं। सब की सेवा का पुरस्कार मिलता है झिडकियों और गालियों के रूप में। उन्हें घर की चार-दीवारी में ही हर समय बन्द रहना पड़ता है। बाहर निकलने की उन्हें आज्ञा नहीं है।

यह दुखी जीवन भोगने के बाद लडकियाँ ससुराल जाती हैं। उसके ससुराल जाने के समय माँ भी दो आँसू गिरा देती है। वह रोती है—"कौन घर सम्भालेगा, कौन बच्चों को नहलाए धुलाएगा, कौन उन्हें खिलावेगा। हाय! इसने तो घर इस तरह सम्भाला हुआ था कि मुझे तो किसी बात की चिन्ता थी ही नहीं। बेचारी सारा दिन काम में लगी रहती थी। बडे प्रेम से बच्चों को नहलाती धुलाती थी और खाना खिलाती थी। मैंने तो आज तक किसी को रोते नहीं सुना। आज मुन्ना भी उदास होकर रो रहा है। अच्छा! लड़कियाँ तो पराया धन होती हैं। उन्हें तो अपने घर जाना ही ठहरा ।"

आगे ससुराल मे सास इस प्रतीक्षा में होती है कि बहू आकर चौका-चूल्हा सम्भालेगी। पति को उसके मित्रों और 'शुभ चिन्तकों'

ने पहले से ही यह शिक्षा दी हुई होती है कि "पत्नी को सदा काबू में रखना चाहिये। नहीं तो फिर तंग होना पड़ता है। आते ही रोब डाल देना चाहिये। ऐसा न हो कि वह कहीं काबू से बाहर होजाए।" कोई कहता है, "जब मेरा विवाह हुआ और मेरी धर्मपत्नी घर आई तो उसी दिन मैंने किसी बहाने से अपने नौकर को खूब डाटा और फिर मरम्मत की। बस, मेरी धर्मपत्नी के दिल में मेरे प्रति डर बैठ गया और वह उसी दिन से मेरा रोब मानने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि वह आज तक मेरे सामने नहीं बोली।"

जब लड़की ससुराल पहुँचती है तो पहले-पहल उसकी बड़ी आवभगत होती है। बहुत बढ़िया बढ़िया कपड़े पहनकर वह सारा दिन पलंग या पीढ़े पर बैठी रहती है। रिश्ते तथा पड़ौस की सब स्त्रियाँ नई बहू को देखने आती हैं। वे उसके गहने-कपड़े देखती हैं, दहेज मे आया हुआ उसका सामान देखती हैं। इन सब चीजों की वे खूब प्रशंसा करती हैं। साथ ही उसके मा-बाप की भी प्रशंसा होती है। सब स्त्रियाँ उसे 'मुँह दिखाई' के रुपये देती हैं। बहू को अच्छे से अच्छा भोजन कराया जाता है। सास भी उस पर बलि-बलि जाती है। ननदें अपनी भौजाई को देखकर बड़ी प्रसन्न होती हैं। देवर भी उसके साथ हास्य विनोद करते हैं, उसका घूंघट खोलने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु वह 'भेंट' लिये बिना उनसे घूंघट नहीं खोलती। जेठानियाँ भी उसकी बड़ी आवभगत करती हैं। उसे रसोई के

पास तक नहीं जाने देतीं—कहीं उसके पैरों की मेंहदी न उतर जाए। उसे पिलग-पीढे पर बैठे-बैठे ही खाना खिलाया जाता है। साराश यह कि नई बहू की हर तरह खातिर की जाती है।

पर 'नई नौ दिन'। फिर उसके साथ भी वही होता है जो औरों के साथ होता आया है। सास की गालियाँ, जेठानियों की झिडकियाँ, ननदों के व्यग तथा पति का क्रोध ही उसके भाग्य में लिखे होते हैं। रसोई का सारा काम उसके सुपुर्द हो जाता है। सास, जेठानियाँ और ननदें राज करने लगती हैं। बुहारी झाडू लगाए तो बहू, वर्तन माजे तो बहू, रोटी बनाए तो बहू, कपडे धोए तो बहू। जो काम हो सब बहू करे—दूसरे सब लोग उस पर केवल शासन करें। बस वही मायके के जीवन की यहाँ आवृत्ति होती है। न मायके सुख मिला, न ससुराल।

यदि वेचारी को किसी दिन सवेरे उठने में देर हो जाए तो सास उसके पीछे पड जाती है। "भला कोई दोपहर तक भी पलग पर पड़ी रहती है। तेरी मा ने तुझे यही कुछ सिखाया था? सिर पर सूरज चढ़ आया है पर इस फूल कुमारी की अभी आँख ही नहीं खुली।" यदि वेचारी को किसी दिन रात को सास के सोने से पहले नींद आ जाए या किसी काम को छोडकर वह सो जाए तो वस समझो शामत आ गई—"शाम को ही नवाबजादी को नींद आ जाती है। अभी सारे वर्तन माजने के लिये पडे हैं। इन्हें क्या तेरी माँ आकर माजेगी?"

वर्ष में कई अवसर और त्योहार आते हैं जब वहू के मायके

से कुछ न कुछ आना चाहिये—कपडे, रुपये, फल, मिठाई आदि। यदि किसी अवसर पर यह भेंट न आवे या आशा से कम आवे तो सास उसके अगले पिछलों को घुन डालती है। मायके वालों को ऐसी उपाधियाँ दी जाती हैं कि सुनने वालों के मन गद्‌गद हो जाते हैं।

यदि पति को कुछ हो जाए तो बहू की शामत। "अरी कम्बख्त ! तूने मेरे बेटे को क्या खिला दिया ? जिस दिन से तू आई है वह तो आधा भी नहीं रहा।" इस तरह का व्यवहार होता है बहू के प्रति सास का।

ननदों की तो पूछिये ही ना। वे तो भावजों के साथ वह करती हैं जो और किसी ने न किया हो। मानो उनका कोई पिछले जन्मों का वैर हो। झूठी निन्दा करके उनके विरुद्ध अपने माँ-बाप और भाइयों को भड़काना उनका नित्य का काम है। जब बहू पर क्रोध किया जाता है और उसे धमकाया जाता है तो वे हँसती हैं।

जेठानिया उसे अपना शिकार बनाना अपना परम-कतव्य समझती हैं। उसे तग करने का मानो उनका जन्म सिद्ध अधिकार है।

साराश यह कि लड़कियों की वह दुर्गत बनती है कि उसका ठीक वर्णन नहीं हो सकता।

- इस सारे अत्याचार और फाँद का यह परिणाम होता है कि पुत्र कुछ वर्षों के बाद माँ-बाप से अलग हो जाता है और पति

पत्नी अलग निर्वाह करने लगते हैं। परन्तु वेचारी को सुख यहाँ भी नसीब नहीं होता। उसे स्वय ही घर का सारा काम करना पडता है—बुहारी झाडू लगाए, रोटी बनाए, बच्चों को नहलाए-धुलाए और उनकी हर तरह सम्भाल करे। पति की टहल-सेवा भी करनी हुई। वे सवेरे काम धधे पर चले जाते हैं और शाम को आते हैं। शाम को कई वार वे मित्रों के घर चले जाते हैं और घर देर से पहुँचते हैं। अधिकाश स्त्रिया पति के भोजन कर लेने के बाद भोजन करती हैं। इसलिए यदि पति देर से घर पहुँचे तो वे भी भूखी बैठी रहती हैं—चाहे रात के १० बज जाए और भूख से उनकी आतें कुलवुला रही हों। शाम को वह सब को भोजन खिलाकर बरतन माजती है, बिस्तर ठीक करती है, रात को बाल-बच्चों को दूध पिलाती है और फिर उन्हें सुलाती है। बालकों को यदि नींद न आ रही हो तो उसे भी जागना पडता है। वह एक को थपकती है, दूसरे को पीटती है, तीसरे को दूध पिलाती है, परन्तु सोता कोई भी नहीं। जैसे तैसे उन्हें सुलाकर वेचारी को आधी रात सोना नसीब होता है। सवेरे फिर सब से पहले, मुँह अधेरे, वेचारी को उठकर नित्य के कार्यों में जुटना पड़ता है।

इस तरह दुखों, क्लेशों और झगडों झंझटों में स्त्री का जीवन व्यतीत होता है।

वडी-बूढ़ी होने पर यदि पति का देहान्त उससे पहले हो जाए तो उसका ससार में कोई सहारा नहीं रहता। पति की सारी

जायदाद व सम्पत्ति पुत्र सम्भाल लेते हैं। उस वेचारी को कुछ भी नहीं मिलता। उसे पुत्रों और उनकी पत्नियों के मुह की ओर देखना पडता है। वे यदि चाहें और उस पर तरस खाएं तो उसे दो टुकडे दे डालते हैं, नहीं तो उसको पेट भरना भी नसीब नहीं होता। यह भी नहीं है कि वह दो सूखी रोटिया भी खाली बैठकर खाना चाहती हो। वह घर के बरतन माजती है, कपडे धोती है, बच्चों को खिलाती है, फिर भी उसे पुत्रों और बहुओं की भाड़ें सुननी पड़ती हैं। यदि वह कभी थोड़ी बीमार हो जाए तो एक कोने मे उसकी चारपाई डाल दी जाती है। यदि किसी को उस पर दया आ गई तो दवा ला दी, नहीं तो पड़ी रहे। इस तरह विधवा मा वेचारी अपनी घड़िया गिनती रहती है और यमदूतों की प्रतीक्षा करती रहती है। केवल मृत्यु ही उसे दुखों-क्लेशों और झझटों से छुटकारा दिलाती है। मृत्यु के उपरात सब घर वाले, रिश्तेदार आदि एकत्रित होते हैं और उसका अन्तिम सस्कार कर दिया जाता है। कुछ दिन स्यापा किया जाता है, पल्ले किये जाते हैं और आसू बहाए जाते हैं। उसके बाद बुढ़िया को सब भूल जाते हैं। यह स्त्री जिसने न तो पुत्री के रूप में सुख पाया, न बहू बनकर आनन्द प्राप्त किया, न घर की मालकिन बनकर सुख भोगा, न जिसे 'माजी' की पदवी पाकर पेट भरकर रोटी मिली, इस प्रकार ससार से कूच कर जाती है और, दूसरे शब्दों में, अपने दुख-पूर्ण जीवन से छूट जाती है।

यह है हमारे यहाँ स्त्री-जाति की साधारण तौर पर दशा।

इसमे कोई सन्देह नहीं कि आज भी ६० प्रतिशत घरों मे स्त्रियों की यही दशा है। हमारी बच्चियाँ, बहनें, बहुएँ और माताएँ यही नरक का जीवन भोग रही हैं। ये बेचारी गउओं की भाति चुप चाप इन अत्याचारों और अन्यायों को सह रही हैं। कुछेक इस नारकीय जीवन से तग आकर आत्म-हत्या कर लेती हैं। कितनों का हर घडी सास, ननद अथवा पति से झगड़ा फिसाद होता रहता है। कई स्त्रियाॅ घरों से निकल भागती हैं। साराश यह कि हमारा गृहस्थ जीवन दु खों का जीवन बन गया है। हमने अपने घरेलू जीवन को नरक बनाया हुआ है। पता नहीं आगे कोई नरक है या नहीं, परन्तु हमारे गृहस्थ जीवन की अपेक्षा नरक में भी भला और कौन-सी यातनाएँ होंगी ?

इसका एक परिणाम यह हो रहा है कि हमारे यहाॅ की पढ़ी लिखी लडकियाॅ विवाह को घृणा की दृष्टि से देखती हैं। जिनका वश चलता है वे विवाह नहीं करतीं, बल्कि नौकरी आदि करके स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती हैं। और गृहस्थ-जीवन के क्लेशों से घबराकर आजकल माॅ बाप भी अपनी लड़की के लिये वह घर ढूॅढने का प्रयत्न करते हैं जहाॅ न सास हो, न ननद, ताकि उनकी लडकी ही घर की मालकिन बने। या वे नौकरी वाला लडका देखते हैं कि न वह घर मे रहे और न उनकी लडकी क्लेशमय जीवन व्यतीत करने के लिये विवश हो। पति भी आजकल यही प्रयत्न करते हैं कि उनकी पत्नी अपनी सास, जेठानियों और ननदों से दूर ही रहे। इसलिये या तो वे विवाह होते ही मा-बाप से अलग

हो जाते हैं, या विवाह के बाद बाप से अलग कहीं और जाकर काम धधा कर लेते हैं।

स्त्रियों के साथ हमारे सामाजिक दुर्व्यवहार के क्या परिणाम निकलते हैं ? पुत्रों की मा-बाप के साथ नहीं बनती, बहुओं की सास, जेठानियों और ननदों के साथ नहीं बनती, और भाइ बहनों की लड़ाई हो जाती है अर्थात् एक ही घर के प्राणियों म आपस में महाभारत छिड़ जाती है। केवल दिखावे का प्रेम और शिष्टाचार रह गया है। अन्दर से हम अपने किसी सगे को देखकर खुश नहीं होते। गृहस्थ-जीवन के इन्हीं झगड़ों और क्लेशों के कारण हमारे मन अपने सगों से खट्टे हो जाते हैं। हमारा सामाजिक और कौटुम्बिक सगठन छिन्न भिन्न हो चुका है। हम जिन सामाजिक और कौटुम्बिक कर्तव्यों का पालन करते भी हैं वह केवल रीति-रिवाजों से बंधे हुए करते हैं, हमारी उनके प्रति कोई श्रद्धा या अच्छी भावना नहीं है।

पति और पत्नी

पति और पत्नी का जीवन भी एक विलक्षण जीवन होता है। ललाट के लेखों ने, या परमात्मा की इच्छा ने, या ग्रहों वा नक्षत्रों ने, या प्रारब्ध ने, या मा बाप की कृपा ने, या यूँही, (कुछ भी कह लीजिये), दोनों का जीवन एक घर मे मिला दिया है। दोनों के दुख-सुख एक हो गये है। दोनों ने अपना बाल्यकाल अलग अलग, एक-दूसरे से अपरिचित, अनभिज्ञ, रहकर बिताया, परन्तु जब जीवन की दूसरी पैड़ी पर चढ़ने लगे तो जीवन ने दोनों को एक-दूसरे के साथ मिला दिया। कितने चाव और आनन्दोत्सव के साथ दोनों को मिलाया जाता है, दोनों के मा-बाप गद्गद होते हैं, सगे-सम्बन्धी, दोस्त, मिलने वाले, पड़ौसी, सब बधाइयाँ देते हैं। लड़के और लडकी की कितनी क़द्र की जाती है, खातिरें की जाती हैं। परन्तु थोडे दिनों के बाद वही गृहस्थी के झमट, सगे सबन्धियों के साथ झगडे और मन मुटाव, बालकों की मुसीबत, पेट के धंधे के कष्ट, दुनियादारी जीवन मे एक भी सुख प्राप्त नहीं होता। वाह रे मनुष्य जीवन! दुखों का घर, घरों का दुख, माया का मोह, मोह की माया सुख कहीं भी नहीं। न घर में सुख, न बाहर सुख, न मायके में सुख, न ससुराल मे सुख, न देश में सुख, न परदेश मे सुख न बालक सुखी, न युवक सुखी, न

यूढे सुखी ! केवल एक आध क्षण खुशी का मिलता है—जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, फिर सब खुशी लुप्त हो जाती है।

हम सदा कहते हैं कि पति और पत्नी का मिलन एक आध्यात्मिक मिलन है, पत्नी पति की अर्धाङ्गिनी है। यदि पति राजा है तो पत्नी उसकी मन्त्री है। दोनों भव सागर से पार होने के लिये एक नाव के समान हैं। परन्तु हम कर क्या रहे हैं ? क्या पति और पत्नी आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, क्या दोनों प्रेम के एक तार मे पिरोये हुए हैं ? क्या वे 'एक प्राण, दो शरीर' हैं ? पति को हम विवाह के समय शिक्षा देते हैं कि अपनी पत्नी को अच्छी तरह वश मे रखना। इसी में तुम्हारी भलाई है। पत्नी को हम कहते हैं कि 'पति देव' की पूजा करनी ही उसका धर्म है। परन्तु क्या 'रोब' और 'सेवा' दोनों एक साथ निभ सकते हैं ? जहाँ रोब है, वहाँ प्रेम कैसे रह सकता ? हमारा आदर्श कुछ और है, परन्तु हम कर कुछ और रहे हैं। हमारे यहाँ पत्नी और पति का साथ घर की देहरी तक ही सीमित है। घर से बाहर दोनों का अलग-अलग क्षेत्र है, अलग अलग दिलचस्पियाँ हैं, अलग अलग मनोरंजन हैं।

नया नया विवाह होता है तभी चाव रहते हैं। कुछ दिन व्यतीत होने पर जीवन की सरसता और आनन्द उड़ँछू हो जाते हैं। सगे-सम्बंधियों को जैसे उनसे अब कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा। अब पति और पत्नी को अपनी अपनी आप निबेड़नी है, दोनों ने अपना जीवन आप काटना है, दोनों ने जैसे तैसे एक

दूसरे के साथ निबाह करना है। दोनों एक दूसरे से रूठते भी हैं, परन्तु मनाना भी एक दूसरे को स्वय ही है। दोनों ने यदि पार होना है तो एक बेडे में और डूबना है तो एक बेडे में। परन्तु दोनों के काम अलग अलग होते हैं, कर्तव्य अलग अलग होते हैं और रुचियाँ तथा बुद्धि भी विभिन्न होती हैं। फिर दोनों का निवाह किस तरह हो? पति देव सवेरे ही खा पीकर अपने काम धंधे पर चले जाते हैं, पत्नी सारा दिन घर में बन्द रहती है। पति रात को सोने के समय घर को आते हैं और खाना खा पीकर सो जाते हैं। पत्नी को यह पता नहीं होता कि उसके पति सारा दिन क्या करते रहते हैं, न ही पति को पता रहता है कि उसकी पत्नी दिन भर क्या करती है। पत्नी को इतना ही पता होता है कि उसके घर वाले किसी दफ्तर में बाबू हैं, या दुकानदार हैं, या डाक्टर हैं या वकील, मास्टर आदि। बस, उसे इतना ही पता होता है। इससे अधिक जानकारी प्राप्त करने की उसे आवश्यकता ही नहीं होती। उधर पति देव भी इतना ही जानते हैं कि उसकी घर वाली घर की देख भाल करती है, खाना बनाती है और बच्चों का पालन-पोषण करती है पत्नी को यह पता नहीं होता कि उसके पति को सारा दिन क्या क्या करना पड़ता है, किस किस तरह करना पडता है, किन किन एव कैसे-कैसे लोगों से वास्ता पडता है, और किस तरह उनका दिन व्यतीत होता है। पति को यह ज्ञान नहीं होता कि उसकी पत्नी किस तरह बच्चों से निपटती है, सारा दिन किस तरह काटती है, उसका मन और मस्तिष्क क्या

सोचता और विचारता रहता है और उसके विचार कहाँ-कहाँ दौड़ते रहते हैं। दोनों को एक दूसरे के विचारों और रुचियों की कोई खबर नहीं। प्राय दोनों की मानसिक अवस्था मे दिन रात का अन्तर होता है। दोनों अपने अपने विचार एक-दूसरे के सामने नहीं रख सकते क्योंकि दोनों में भारी मानसिक अन्तर है, दोनों का मानसिक स्तर भिन्न है। न ही दोनों के मनोरञ्जन एक हैं और न दोनों की रुचियाँ एक हैं। पत्नी को उन बातों का पता तक नहीं जो पति के मन में हैं। यह विस्तृत जगत्—देश देशान्तर—राजनीति, अर्थ शास्त्र आदि अनेकों विषय हैं जिनमें पति दिलचस्पी लेता है, परन्तु उन विषयों पर वह पत्नी से बात नहीं कर सकता क्योंकि उस बेचारी को उनका क्या पता? उसे उनका ज्ञान ही नहीं है तो वह उनमे क्या दिलचस्पी ले? यदि पति कुछ सोच या पढ़ रहा हो और पत्नी पूछ बैठे कि "क्या सोच रहे हो?" या "क्या पढ रहे हो?" तो पति केवल यही उत्तर देता है—"कुछ नहीं!" यह सुनकर पत्नी रुष्ट हो जाती है। वह समझती है कि उसके पति देव उससे बातें छिपाते हैं। परन्तु वास्तव में पति इसलिये बातचीत नहीं करता कि वह बेचारी उन बातों को समझ नहीं सकती। पत्नी कई बार कई तरह की शकाएँ मन मे पैदा कर लेती है। यह सन्देह करने का स्वभाव नित्य प्रति दृढ़ होता जाता है और धीरे-धीरे बात-बात मे पत्नी पति पर सदेह करने लग जाती है। यह है दोनों के मानसिक-स्तर में अन्तर होने का परिणाम। फिर इसका और दुष्परिणाम

यह होता है कि दोनों मे मन-मुटाव होने लगता है, झगडे शुरू हो जाते हैं और कुछ दिनों के बाद उनका गृहस्थ-जीवन नरक बन जाता है।

पति पत्नी मे और भी कई कारणों से झगडे होते रहते हैं। स्त्री अपने मायके और सगों की हिमायत करती है, उनकी प्रशंसा करती है। यह बात ससुराल वालों को सहन नहीं होती। वे व्यग करते रहते हैं—"इसे तो अपने ही भाई-बहन, भावजें, भानजे, भतीजे अच्छे लगते हैं। देवरों, जेठ के बच्चों, ननदों के बच्चों आदि को तो यह देखना भी पसन्द नहीं करती।" इस तरह झगडे बढ़ते चले जाते हैं। यदि पति अपने सगों को कुछ देने का साहस करे तो पत्नी उसके सिर हो जाती है। वह कहती है—"सारा घर उन्हें ही दे डालोगे क्या ? उन्होंने हमे कौन-सी जागीर दे देनी है। कभी उन्होंने हमारे बेटे की हथेली पर भी चार पैसे रखे हैं ? फिर क्यों हम उनकी खातिरें करें ?" पत्नी इस प्रकार के उपालम्भ नित्य प्रति देती रहती है। कई बार तो यह पति के सम्बधियों और कुटुम्बियों को भी उपालम्भ देने से नहीं चूकती। इस तरह पति-पत्नी दोनों से उनके सगे-सम्बधी नाराज हो जाते हैं।

यह सब हो क्यों न ? हम लडकियों को इस योग्य ही नहीं बनाते कि वे गृहस्थ के छोटे से दायरे के बाहर कुछ सोच सकें या उनका मस्तिष्क किसी और दिशा मे भी लग सके। उनका मस्तिष्क सारा दिन यही सोचता रहता है कि अमुक रिश्तेदार ने यह कहा

था और यह किया था। उनकी दृष्टि अपने कुटुम्ब या सम्बन्धियों के क्षेत्र से परे जाती ही नहीं। जब वे छोटी होती हैं तो हम उन्हें कोई शिक्षा नहीं देते। उन्हें तो केवल घर का काम काज और रिश्तेदारों के सम्बन्ध मे चर्चा करना ही सिखाया जाता है। ससार का उन्हें और कोई ज्ञान नहीं होता। इसीलिये आजकल के लड़के पढ़ी लिखी लडकिया चाहते हैं ताकि दोनों एक-दूसरे को समझ सकें, दोनों एक-दूसरे की रुचियों और मनोरजनों मे साथ दे सकें, और दोनों एक दूसरे के दुख सुख मे वास्तविक रूप से साझीदार हो सकें। पढ़ी लिखी लडकिया अपने मस्तिष्क को किसी न किसी अच्छे काम मे लगाए रखेंगी—उन्हें सारा दिन सगे सम्बन्धियों की बातें ही नहीं सूझती रहेंगी। यदि हम पढ़ने लिखने का चाव उनके मन में डाल दें तो वे स्वय ही निरथक लडाई झगडे छोड़ देंगी। खाली बैठे २ मनुष्य को उट-पटाग बातें सूझती हैं। इसी प्रकार जब स्त्री के मस्तिष्क को कोई और काम न हो तो वह अवश्य ही पति से, बाल बच्चों से और सगे सम्बन्धियों से लडेगी। यदि उनके मस्तिष्क को किसी और दिशा में लगा दिया जाए तो अन्य कई तरह के लाभ के साथ २ यह भी लाभ होगा कि स्त्रिया कम झगड़ालू होंगी और फलस्वरूप पति-पत्नी और सारी गृहस्थी का जीवन सुखमय होगा।

आजकल हमारी स्त्रियों को घर के काम काज के अतिरिक्त यदि और कोई काम है तो वह है बातें बनाने का। स्त्रिया बड़ी बातूनी होती हैं। जहा दो स्त्रिया इकट्ठी हुई (और स्त्रिया अकेली तो बैठ

ही नहीं सकतीं) वहा वे बातों में ऐसी जुटती हैं कि जब तक कोई बहुत आवश्यक कार्य न आ पडे वे बातें करती ही रहेंगी। और जहा सयोग और ईश्वर की कृपा से ४-५ स्त्रिया एकत्रित हो जाए, वहा तो कॉव-कॉव होती ही रहती है। फिर मजा यह है कि उनकी बातें धीरे तो हो ही नहीं सकतीं। जब तक वे जोर २ से न बोलें उन्हें आनन्द ही नहीं आता। सभाओं, मन्दिरों, गुरुद्वारों, सत्सगों आदि मे जिधर स्त्रिया बैठी हों उधर शोर एक क्षण के लिये भी बन्द नहीं होता। कोई भी, और कैसा भी, अवसर क्यों न हो वे एक-दूसरे के साथ अपनी ही सभा प्रारम्भ कर देती हैं—उनका अपना ही व्याख्यान प्रारम्भ हो जाता है। एक-दूसरी के कपडों, जेवरों की निन्दा-स्तुति प्रारम्भ कर देती हैं। वे एक दूसरी के जेवरों की गढ़ाई-बनाई के दाम पूछेंगी, कपड़ा किस दुकान से कितने मे लिया—यह पूछेंगी। यदि कोई स्त्री चुप बैठी हो तो उसे कहेंगी, "बडी मिज़ाज वाली है।" चुप होकर बैठना हमारी स्त्रियों के नियमों के विरुद्ध है।

जब स्त्रिया अपनी सहेलियों से अथवा गली मुहल्ले मे अपनी मिलने वाली महिलाओं से बात चीत करती हैं तो अपने दुख-सुखों का दफ्तर खोल देती हैं। यहा तक कि घर की कहने-न कहने वाली सभी बातें कह डालती हैं। जब तक वे सब बातें न कह डालें उन्हें चैन ही नहीं पडता। उनके पेट मे कोई बात पच ही नहीं सकती। पति की शिकायतें तक सहेलियों के सामने कर डालती हैं।

बेचारी बातों के अतिरिक्त और करें भी क्या ? घर के झगड़ों

और क्लेशों से तंग आई हुई स्त्रियों के पास मन बहलाने के लिये गप शप के अतिरिक्त और साधन है ही क्या ? हमने उन्हें और सिखाया ही क्या होता है ? इसलिये जब भी उनके पास अवकाश का समय होता है वे उसे बातें करके बिता देती हैं। हमने उन्हें न पढ़ाया न लिखाया। वास्तव में हमने उन्हें विद्या से पूरी तरह वंचित रखा है। तो फिर उन्हें अपने आप ही निरर्थक और निकम्मी बातों में समय व्यतीत करना हुआ। यदि उन्हें पढ़ने लिखने का तथा किसी कला-कौशल का शौक़ हो तो अपने आप ही उनका मन उधर लगे। परन्तु यह शौक़ तभी हो सकता है जब हम उन्हें उचित प्रकार की शिक्षा दें।

विधवा का जीवन

चाहे चढ़ती जवानी हो, चाहे उतरती अवस्था, स्त्री के लिये पति की मृत्यु एक असह्य चोट है। पति की मृत्यु होते ही सारा नक्शा ही बदल जाता है। ससार कुछ और ही और दिखाई देने लगता है। सगे सम्बन्धी कुछ और ही तरह देखने लगते हैं। सामाजिक क़ानून और रीति रिवाज ऐसे बनाए गए हैं कि स्त्री-जाति के साथ बडा अन्याय किया गया प्रतीत होता है। पति के मरने पर स्त्री का सासारिक-जीवन समाप्त हुआ समझा जाता है। पहले पत्नियाँ अपने पतियों के साथ 'सती' हो जाती थीं। सती होने पर उन्हें स्वर्ग मिलने का विश्वास दिलाया जाता था। आज कल सती की प्रथा बन्द है। विधवा को जीवित रहना पड़ता है। परन्तु उसका जीवन इतना दुखदायक है कि देखकर पत्थर भी पिघल जाए। उनके जीवन को देखकर हम स्त्री की सहन शक्ति और धैर्य की प्रशसा किये बिना नहीं रह सकते। परन्तु साथ ही आश्चर्य होता है कि इतने घोर अत्याचार सहते हुए भी वह आज से बहुत पहले क्यों न विद्रोह का झडा लेकर खडी हो गई। आज भारत मे भी विधवा विवाह की लहर चल पडी है, परन्तु जिस चाल से हम चल रहे हैं उससे जनता की विचार धारा बदलने में कई शताब्दियाँ लग जाएगी। पढे-लिखे लोगों की थोडी-सी सख्या

आम तौर पर विधवा विवाह के पक्ष में है, शेष अधिकांश जनता इस प्रथा को घृणा की दृष्टि से देखती है और इस काम का जहाँ तक हो सके विरोध करती है। इसका परिणाम यह है कि हमारे देश में हजारों लाखों युवा-अवस्था की स्त्रियाँ वैधव्य का नारकीय-जीवन व्यतीत करने के लिये विवश हैं।

यदि विधवाओं का जीवन सुखी होता और उन्हें घर वालों की सहानुभूति उपलब्ध होती तो कोई आपत्ति न थी। परन्तु जो बर्ताव हम लोग विधवाओं के साथ करते हैं वह अत्यन्त घृणा के योग्य और कमीना है। लड़की का विवाह हो जाने के बाद उसके माँ बाप का उस पर कोई अधिकार नहीं रहता। वे उसे वापिस अपने घर में नहीं ले जा सकते। इसलिये बेचारी विधवा को दु खम्-सुखम् अपना शेष जीवन ससुराल में व्यतीत करना पड़ता है।

सास विधवा बहू को बहुत मनहूस समझती है। वह समझती है कि उसके पुत्र को बहू ने ही 'खाया' है। जब उसे बहू पर क्रोध आता है तो वह उस पर यही कहकर बाण मारती है। इस बात का बेचारी निर्दोष दुखिया पर क्या प्रभाव होता है यह वही जानती है, परन्तु बेचारी सी नहीं कर सकती। वह तो 'पिछले कर्मों का फल' भोग रही है। छातों के नीचे जीभ दबाकर दिन काटना विधवा के भाग्य में लिखा है, यदि वह आह करती है तो यह उसकी 'गुस्ताखी' है और जी तोड़कर सेवा करनी उसके जीवन का आदर्श है। कपडे धोने, वर्तन माजने, झाड़ू लगानी – ये सब काम उसके सुपुर्द कर दिये जाते हैं। नियन्त्रण भी विधवा पर

यडे कठोर लगाए जाते हैं। रगीन कपडे भी पहनना उसके लिये वर्जित है, आभूषणों का तो वह नाम भी नहीं ले सकती, वहुत सफेद कपडे भी उसके लिये ठीक नहीं समझे जाते। जोर जोर से हँसना निर्लज्जता की निशानी है। कम बोलना और ईश्वर की भक्ति करनी—ये विधवा के गुण समझे जाते हैं। उसकी सारी आयु शोक मे व्यतीत होनी चाहिए। आनन्द और प्रसन्नता उसके लिये नहीं हैं। बूढ़ी होकर भी वह जिसके द्वार पर रहे, उसके घर का काम-काज नौकरानियों की भाति उसे करना चाहिये। यदि किसी रिश्तेदार ने सेवा करानी होगी तो वह बेचारी विधवा को ही घसीट कर ले जाएगा। विधवा ही एक ऐसी नौकरानी है जो केवल रोटी-कपडे पर सारा दिन परिश्रम करती है। केवल काम ही उससे नौकरों वाला लिया जाता हो सो बात नहीं है। उससे व्यवहार भी नौकरों जैसा ही किया जाता है।

यदि किसी विधवा के पास कोई बाल बच्चा हो तो उसकी स्थिति और भी शोचनीय हो जाती है। बच्चों के लिए अनेकों चीजों—खिलौनों, कपडों, पुस्तकों—आदि की माग करना स्वाभाविक है। परन्तु बेचारी विधवा ये सब मागें कहाँ से पूरी करे। जब उसके बच्चे किसी चीज के लिये रूठते हैं और हठ करते हैं तो विधवा मा अपनी छाती पर मुक्का मारकर रह जाती है। उसके बच्चे अपने चाचाओं, ताउओं, दादा-दादी, बुआ आदि के तरस पर रहते हैं। यदि वे किसी बच्चे को कुछ दिलवादें या थोड़ी बहुत उसकी देख भाल कर दें तो बच्चा उनसे प्यार करने लगता है।

परन्तु विधवा के बाल-बच्चों का हाल आमतौर पर बुरा ही होता है। वे बेचारे दयनीय दशा में ही पलते हैं। यदि कभी कोई बच्चा किसी बात के लिये अधिक हठ कर बैठे तो विधवा खिन्न और क्रुद्ध होकर उसे पीट डालती है। बेचारे बच्चे को क्या पता कि उसका हठ करने का अधिकार छिन चुका है। चारों ओर से निराश और दुखी होकर विधवा रोकर अपने मन का बोझ हल्का करना चाहती है। परन्तु रोना भी उसके लिये वर्जित है। विधवा स्त्री को कोई भी अपने द्वार पर रोने नहीं देता। इसे अशुभ समझा जाता है। यह दूसरी बात है कि वह चोरी-छुप्पे किसी कोने मे दुबक कर चुपके-चुपके सिसकिया भरले। परन्तु यदि किसी ने उसे रोते देख लिया तो बस समझलो कि उसकी शामत आ गई। इसलिये वह दिल पर पत्थर रखकर जीवन के दिन काटती है। विधवा के बच्चों से अधिक दुर्दशा संसार मे और किसी की नहीं होती। उसको कोई नहीं पूछता, कोई उसकी परवाह नहीं करता, कोई उसे प्यार नहीं करता।

यहा तक ही बस नहीं। विधवा पर और भी कई तरह से अन्याय और अत्याचार होते हैं। यदि उसका पति जीते जी बीमा आदि कराके अपनी पत्नी के निर्वाह के लिये कुछ प्रबन्ध कर भी गया हो तो भी विधवा स्त्री को बडे कष्ट सहने पड़ते हैं। पहले तो वह रुपया मिलना ही दुष्कर होता है, क्योंकि बिना ससुर, जेठ आदि की सहायता के रुपया नहीं मिल सकता। यदि मिल भी गया तो जिनके पास उसे रहना पडे वे रुपये को हथिया लेते हैं।

या उसे कहीं 'जमा' करा देते हैं कि जब विधवा को आवश्यकता पड़ेगी, निकलवा देंगे। उसके पास रुपया इसलिये नहीं छोड़ा जाता कि कहीं वह उसे बर्बाद न कर दे। इस तरह हम बेचारी को बातों में फुसलाकर ठगते हैं। तात्पर्य हमारा वास्तव मे यह होता है कि जब वह मर-खप जाए तो यह पैसा भी हमारे हाथ आ जाए। उसके जीते जी भी हम उसके रुपये का प्रयोग निःसकोच अपने काम धन्धे मे करते हैं। विधवा स्त्री भी क्या करे ? उसे इन बातों की समझ तो होती नहीं, इसलिये उसे किसी न किसी का विश्वास करना पडता है और किसी न किसी की सहायता लेनी पडती है। परन्तु माया का लोभ बुरा होता है। भले-मानस भी धोखा देने से नहीं चूकते। भाई बन्धु भी विधवा बहन का रुपया हजम करते देखे-सुने गए हैं।

यदि वह किसी ऐसे सम्बन्धी के यहाँ जाकर रहने लगे जो ससुराल से कुछ अलग-सा हो, परन्तु जिसका उसे विश्वास हो तो लोग सैंकड़ों आक्षेप करने लग जाते हैं। विधवा बेचारी का छुटकारा किसी तरह भी नहीं हो पाता। वह चक्की के दोनों पाटों के बीच पिसकर भी 'सी' न करे तभी दुनिया उसे खडी होने देती है। तभी तो बेचारी के साथ इतनी बुरी की जाती है कि कई विधवाएँ तग आकर आत्म-हत्या कर डालती हैं। तभी उनके कष्टों का अन्त होता है।

ऐसे दुखी जीवन से द्रवित होकर आजकल कुछ माँ-बाप अपनी जवान विधवा लडकियों को पढ़ा लिखाकर किसी स्कूल में

अध्यापिका करा देते हैं। इस तरह यह बेचारी अपने पाँव पर खडी होने के योग्य हो जाती है और किसी के ऊपर आश्रित नहीं रहती। परन्तु यह काम सारी विधवाएँ नहीं कर सकतीं, साहसपूर्ण और समझदार गिनी चुनी स्त्रियाँ ही इतनी दलेरी दिखाती हैं। शेष विधवा स्त्रियों को वही जीवन व्यतीत करना पडता है जिसका ऊपर वर्णन किया गया है।

उधर अब अध्यापिका बनने मे भी विधवाओं को कठिनाई अनुभव होने लगी है। कारण यह कि इस क्षेत्र मे भी अब वे लड़कियाँ अधिक आने लगी हैं जो प्रारम्भ से पढ़कर बी ए, एम ए की परीक्षाएँ पास कर लेती हैं। उनकी अपेक्षा विधवाओं को, जो बेचारी थोड़ी ही पढ सकती हैं, कौन पूछता है? उन्हें अधिक पढ़ाना सम्भव नहीं होता। परिणाम यह है कि अब इस तरह भी विधवाओं की कठिनाई हल नहीं होती।

इन दुखों का केवल एक ही इलाज है—विधवा विवाह। और जितने इलाज हम करेंगे वे सब अस्थायी और अधूरे होंगे। हम विधवाओं के सकटों का और किसी तरह निवारण नहीं कर सकते। धर्मपत्नी के मरने पर यदि पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है तो क्या कारण है कि विधवा दूसरा विवाह नहीं कर सकती। यह बड़ा भारी अन्याय है। हम कभी यह आशा नहीं कर सकते कि सारी विधवाए विरक्ति और भक्ति का जीवन व्यतीत करें और आँख उठाकर भी किसी ओर न देखें। यह आशा रखनी मनुष्य के नैसर्गिक स्वभाव की ओर से आँख बन्द करने के बराबर है।

नैतिक बन्धन

स्त्रियों को हमने कई प्रकार के बन्धनों में जकड़ा हुआ है। परन्तु सब से अधिक कड़ी जंजीरें हमारे नैतिक बन्धन हैं। बाल्यकाल समाप्त होते ही लड़कियों को हम लोग घर की चारदीवारी में क़ैद करना शुरू कर देते हैं। माँ-बाप के घर की क़ैद भोगने के बाद, उसी हालत में, हम उसे उसकी ससुराल भेज देते हैं, परन्तु यह भी एक जेल से दूसरी जेल मे बदलने के समान होता है। जैसे बन्धन मायके मे वैसे ही ससुराल मे, अन्तर केवल इतना ही है कि यहाँ पति और ससुर आदि की क़ैद मे होती है और यहाँ माँ-बाप और भाइयों की कैद में। यहाँ 'बहू' और 'पत्नी' के रूप में बन्धन होते हैं और यहाँ 'लडकी' के रूप में। स्त्रियों की कैद वास्तविक अर्थ मे उम्र-क़ैद होती है। उनका छुटकारा मरने पर ही होता है।

जो काम-काज उन्हें अपनी जेलों में करने पड़ते हैं उनका वर्णन अन्य स्थान पर किया जा चुका है। हाँ, उन्हें आयु के अनुसार कुछ सहूलियतें तथा रिआयतें अवश्य मिलती रहती हैं। जिस तरह नाबालिग क़ैदियों से कठोर परिश्रम के काम कम कराए जाते हैं उसी प्रकार छोटी लडकियों की स्थिति है। जिस प्रकार पुराने क़ैदियों को नए क़ैदियों का जमादार बना दिया जाता है तथा उन

पर पाबन्दियाँ कुछ कम कर दी जाती हैं, उसी प्रकार बड़ी आयु की स्त्रियों को नई बहुओं पर शासन करने के अधिकार प्राप्त होते हैं और उन पर रोक-टोक भी कम हो जाती है।

हमारे विचार भी बड़े विचित्र हैं। हम समझते हैं कि स्त्रियाँ स्वभाव से ही कुछ ऐसी होती हैं कि तनिक-सा भी अवसर मिलने पर वे फिसल पड़ती हैं। इसलिये जब से लड़कियाँ बाल्यकाल पार करती हैं तभी से हम उनकी बड़ी कठोर देख रेख प्रारम्भ कर देते हैं। हमें डर लगा रहता है कि कहीं वे 'बिगड़' न जाएं। छोटी-छोटी लड़कियाँ गली मुहल्ले में खेलती फिरती हैं, किन्तु वे भी अपनी जितनी आयु की लड़कियों के साथ खेलें तभी ठीक है। अपनी आयु के लड़कों के साथ उनका खेलना पसन्द नहीं किया जाता। जब लड़कियाँ १२-१४ वर्ष की हो जाती हैं तो उनका घरों से निकलना बन्द कर दिया जाता है। अन्दर-बाहर जाने आने की उन्हें स्वतन्त्रता नहीं होती। पुरुषों के सामने आना उनके लिये पूरी तरह वर्जित है—यहाँ तक कि वे अपने पिता से भी खुलकर बात नहीं करतीं। शाम होने पर वे अपनी जितनी आयु वाली लड़कियों से या गली मुहल्ले की स्त्रियों से थोड़ी देर के लिये मिल आती हैं, बस उनके लिये इतनी ही स्वतन्त्रता है। घर के अन्दर भी उन्हें पूरी स्वतन्त्रता नहीं मिलती। जवान भाइयों के साथ भी वे खुलकर बातें नहीं कर सकतीं। जवान भाई और जवान बहिन का अकेले में बातें करना बहुत बुरा समझा जाता है।

ये नियम कुँआरी लड़कियों के लिये हैं। विवाहित लड़कियों

के लिये और ही नियम हैं। नव-विवाहित लडकियाँ तो अधिक बोलती ही नहीं हैं। उन्हें सब पुरुषों के सामने घूँघट निकालना पड़ता है। पति से भी वे किसी और के सामने खुले तौर पर बातचीत नहीं कर सकतीं। ये बन्दिशें धीरे धीरे थोडी-थोडी ढीली होती जाती हैं। देवरों के साथ हँसी-मजाक करना बुरा नहीं समझा जाता। साथ ही थोडे दिनों के बाद पति के साथ बात करने में भी सकोच कम होता जाता है। थोडी और बड़ी होकर और अधिक स्वतन्त्रता मिल जाती है। तब वे गली मुहल्ले मे आए हुए फेरी-वालों के साथ खुलकर बातें कर सकती हैं। 'पराये मर्दों' के साथ बात करना हम स्त्रियों के लिये बहुत ही बुरी और घृणा के योग्य बात समझते हैं। हाँ, बडी आयु की स्त्रियों को यदि आवश्यकता पड़ जाए तो वे 'पराये मर्दों' से भले ही कुछ बातचीत कर सकती हैं। परन्तु इस मामले मे बडे और छोटे घरानों के नियमों में अन्तर है। 'बडे' घरों की स्त्रियाँ किसी भी अवस्था मे पराये आदमियों से बातचीत नहीं करेंगी। परन्तु साधारण घरानों की स्त्रियाँ आवश्यकता पडने पर इस नियम को तोड देती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इन नैतिक बन्धनों ने हमें बिल्कुल पवित्र और शुद्ध रखा है? क्या हमारे अन्दर इनके कारण कुछ कमजोरियाँ एव बुराइया उत्पन्न नहीं हुई हैं? समय के चक्र ने हमे चारों ओर से घेर लिया है और हमारे कठोर नैतिक बधन भी टूट रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव बडी तेजी से हमारे सामाजिक और घरेलू जीवन पर पड रहा है। हमें अब यह

देखना चाहिये कि ऐसी परिस्थिति में क्या करना उत्तम होगा। हमें सोचना होगा कि क्या वर्तमान युग यह चाहता है कि बन्दियों की कड़ियाँ और भी दृढ़ कर दी जाए या वह यह चाहता है कि उन्हें उतार दिया जाए। आज के युग की यह माग है कि प्रत्येक व्यक्ति को वह स्वतन्त्रता मिल जानी चाहिये जिससे सर्वलोक का हित हो। किसी सभ्यता का अन्धा अनुकरण ठीक नहीं है, परन्तु दूसरे लोगों से अच्छी बातें और सद्गुण ग्रहण करना सभी के लिये कल्याणकारी होगा। ससार के बहुत से विद्वानों ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में बड़ा गहन अध्ययन और छानबीन की है। हमें इस मनोवैज्ञानिक ज्ञान के प्रकाश मे सोचना चाहिये कि हमारा मार्ग किधर है। हमारे नियम और बन्धन पिछले युग के लिये भले ही लाभदायक रहे हों किन्तु आज की परिस्थिति में तो ये नि सन्देह कष्टदायक और हानिकारक हैं। आजकल सारे ससार में चारों ओर स्त्रिया स्वतन्त्र हो रही हैं। फिर भला वे यहा आचार-विचार सम्बन्धी बन्धनों को कहा सहन करेंगी? उनका आचरण 'सुधारने' के लिये हमने जो बन्धन बनाए हुए हैं वे वास्तव में ठीक नहीं हैं। हम हर रोज पढ़ी हुई स्वतन्त्र लड़कियों के सम्बन्ध में सौ-सौ बातें सुनते रहते हैं, खुल्लम-खुल्ला फिरने वाली एव स्वतन्त्र विचारों की स्त्रियों पर कई प्रकार के आरोप लगाए जाते हैं और कालिज की लड़कियाँ तो बहुत ही बदनाम हैं। इस प्रकार की बातों में कितनी सचाई है और कितना झूठ, यह पता लगाना बहुत कठिन है। वास्तव में ऐसी किंवदन्तिया

उन लोगों के मस्तिष्क में जन्म लेती हैं जो अपनी काल्पनिक दुनिया में ऐसा ही कुछ होता देखते हैं या उनकी तीव्र इच्छा होती है कि ऐसा ही कुछ होवे। अर्थात् इस प्रकार की बहुत सी 'घटनाएँ' केवल कपोल-कल्पित एव मन-गढन्त ही होती हैं। हा, यह सम्भव है कि पिंजरे मे पडे हुए पंछी को यदि सहसा छोड़ दिया जावेगा तो वह निकलकर, स्वतन्त्रता के जोश मे, शायद दीवार से जा टकराए, परन्तु यह बात होनी जरूरी नहीं है। सब बातों को देखते हुए हमें चाहिये कि अब हम अपनी शका करने की प्रवृत्ति को छोडकर लड़कियों के बन्धनों को खोल दें।

हम जितना अधिक उन्हें दबाकर और बन्धनों में जकड़कर रखेंगे वे उतना ही अधिक विद्रोह करेंगी और गलत ढग से हमारे हाथों मे से निकलने का प्रयत्न करेंगी। लडकियों के मन पर हर समय यह छाया पड़ी रहती है कि उनके माँ-बाप उन पर हर समय सन्देह करते रहते हैं और वे उनका तनिक-सा भी विश्वास नहीं करते। यह उनके आत्म सम्मान पर बड़ा भारी आघात है और समझदार लड़किया इस बात पर बहुत बुरा मानती हैं। वास्तव में ऐसी स्थिति में हर व्यक्ति ऐसा ही महसूस करेगा। इसका परिणाम यह हो रहा है कि स्त्री-जाति में दिन-प्रति-दिन बेचैनी बढ़ रही है। यदि हमने उनके विचारों और भाव नाओं का निरादर किया तो सम्भव है कि वे किसी अनुचित मार्ग पर भटक जायँ—जैसा कि आजकल हम कई स्त्रियों को देख रहे हैं। हमारे अनुचित बन्धनों से तग आई हुई नारिया अपनी

सभ्यता और आदर्शों को तिलाजलि देकर पश्चिमी सभ्यता की पुजारिन बनती जा रही हैं। कितनी ही स्त्रिया भाई-चारा सम्बंधी समस्त पुराने रीति रिवाजों को छोड़कर अनुचित ढग से स्वतन्त्रता का प्रयोग कर रही हैं और सारे सगे-सम्बन्धियों के लिये दु:ख और कलह का कारण बन रही हैं। इसका सही इलाज यह है कि हमें चाहिए कि स्त्रियों के प्रति हम अपना दृष्टिकोण बदल दें और उन्हें 'विषयों की खान' समझना छोड दें। हमारे 'आचरण' तब तक ठीक नहीं होंगे जब तक हम उन्हें अपना आचरण शुद्ध रखने का अवसर नहीं देंगे। यदि हम स्त्रियों को अपने पाव पर खड़ा होने का अवसर ही नहीं देंगे तो वे अपने पांव पर खड़ी होने में किस तरह समर्थ हो सकेंगी? जब हम उनका 'बन्द' रहना ही अच्छा समझते हैं तो फिर तो उनके बाहर अकेली फिरने से हम आप ही घबरायेंगे। यदि स्त्रिया आम तौर पर स्वतन्त्र और खुले तौर पर घूमे फिरेंगी तो कोई भी व्यक्ति उन्हें कुछ 'कहने' का साहस ही नहीं करेगा। यदि स्त्रिया साहसी और निडर हों तो कोई उनके सामने आख उठाने का दुस्साहस कर ही नहीं सकता। हमने स्त्रियों को निर्बल कह-कहकर उन्हें इतना निर्बल, साहस-हीन और डरपोक बना दिया है कि अब वे सचमुच ही असहाय और बेबस-सी हो गई हैं। फिर भी कई लडकिया इतनी साहसपूर्ण निकल आती हैं कि यदि कोई लड़का उन्हें छेडे तो वे उसका करारा उत्तर देकर या उसे जूतिया मारकर ऐसा सीधा कर देती हैं कि ऐसी अनुचित चेष्टा करने का विचार उसके

मस्तिष्क मे से सदा के लिए उड़छू हो जाता है। ऐसे लोगों को सीधा करने का यही एकमात्र उपाय है और यह उपाय स्त्रियों के अपने हाथ में है।

घरों मे भी हमें अपना व्यवहार बदलना पड़ेगा। अपने लड़के-लड़कियों पर जितनी कम शंका हम करेंगे उनका आचरण उतना ही ऊँचा होगा। और जितना अधिक हम उन्हें दबायेंगे और बन्धनों मे जकड़ेंगे उतने ही अधिक वे बिगड़ेंगे। यदि हम उनके विचारों और भावों को सहानुभूति-पूर्वक समझने का प्रयत्न करेंगे तो हमें पता लगेगा कि युवावस्था में 'विषयों' को छोड़कर अन्य बहुतेरी बातें उनकी दिलचस्पी को अपनी ओर खींच सकती हैं। बाल्यकाल से निकलते ही जवान लड़के-लड़किया सीधे 'विषयों' की दुनिया मे ही नहीं जा बसते। यदि हम उन्हें आरम्भ से ही सुशिक्षा देंगे तो कोई कारण नहीं कि वे बिगड़ जायँ। हा, उनके पास-पड़ौस का अच्छा होना भी आवश्यक है। यदि बाल्य काल से ही उनका वास्ता अच्छे लोगों से और अच्छी शिक्षा से पड़ता आया है तो उनमें कभी बुरी आदतें नहीं पड़ सकतीं। यदि हम उन्हें बचपन से ही भाइयों तथा अन्य सज्जन मित्रों के साथ खुले तौर पर बात चीत करने तथा विचारों का आदान प्रदान करने की छुट्टी देंगे तो उनके मन मे चोरी-छुप्पे किसी से बातें करने की इच्छा कभी पैदा नहीं होगी। साथ ही उन्हें भले-बुरे की भी थोड़ी बहुत पहचान हो जायगी। घरों में हमने कड़े नियम और बन्धन रखे हुए हैं, किन्तु समाज की प्रगति तथा अन्य कारणों से

बहुत से लोग अपनी लड़कियों को पढ़ा रहे हैं। ऐसी लड़किया जो एक और तो स्कूल कालिजों में पढ़ रही हैं, और दूसरी ओर घर में पुराने बन्धनों के वातावरण में रहने के लिये विवश है, वे अपने स्कूल कालिजों में घुल मिल जाती है और अपनी इस स्वतन्त्रता का कई अनुचित ढगों से प्रयोग करने लगती हैं। यदि उन्हें घरों मे ही उचित स्वतन्त्रता दे दी जावे तो वे बाहर अपनी स्वतन्त्रता का अनुचित प्रयोग कभी न करें। अनुचित दबाव में रखना हानिकारक होता है।

एक और बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे घरों में मा-बाप और पुत्र पुत्रियों के बीच मे बहुत बड़ी खाई रहती है। मा-बाप अपने पुत्र पुत्रियों के साथ कभी खुले तौर पर घरेलू एवं सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध मे विचार विमर्श नहीं करते। उन्हें अपने बच्चों के विचारों, भावों और आदर्शों के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं होता। इसी लिये उनकी साधारण बातों और चेष्टाओं के प्रति भी हम सशक रहते हैं। यदि हम उनसे खुले ढंग से बातचीत करेंगे, उनके व्यक्तित्व को और उनके दृष्टिकोण को सहानुभूतिपूर्वक समझने का प्रयास करेंगे तो हम उनको सदेह की दृष्टि से देखना छोड़ देंगे। तभी हमारे और उनके बीच की खाई पटेगी और पारस्परिक विश्वास उत्पन्न होगा। इसलिये हमें चाहिये कि हम उन्हें अपने विचार हमारे सामने रखने के लिये पूरा प्रोत्साहन दें, ताकि उन में विविध समस्याओं पर स्वतन्त्रता-पूर्वक विचार करने की आदत पैदा हो।

चरित्र की दो कसौटियां

पुरुष और स्त्री को हम लोग अलग अलग कसौटियों से परखते हैं। हम जिन दुर्बलताओं को स्त्री जाति के लिये घोर अपराध मानते हैं, उन्हें पुरुषों में देखकर हम उनकी ओर से सहज में ही आखें बन्द कर लेते हैं। स्त्री के लिये 'पतिव्रत धर्म' एक अत्यन्त आवश्यक, वरन् बुनियादी गुण, माना जाता है, किन्तु हमारे सामाजिक विधान मे पुरुष के लिये 'पत्नी व्रत' अथवा इसी प्रकार के किसी गुण की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। हमारा चरित्र-सम्बंधी नापमान भी विचित्र है। जिस बात को हम मनुष्य-समाज के एक अग के लिये महापाप समझते हैं वह दूसरे अग के लिये गुण नहीं तो कम से कम कोई अवगुण भी नहीं मानी जाती। यह स्थिति इसीलिये है कि हमारे सब सामाजिक विधान पुरुषों के बनाए हुए हैं। यदि ये विधान स्त्रिया बनाती तो न जानें पुरुष-जाति की क्या दुर्दशा होती। परन्तु आज भी जब कि समय की गति और माग को हम पूरे तौर पर अनुभव कर रहे हैं, हम लोग पुरानी रूढ़ियों पर अडे हुए हैं। जब कभी दो-चार अच्छे पढ़े लिखे व्यक्तियों में इस समस्या पर बात-चीत होती है तो उनमें से एक दो व्यक्ति अवश्य यही कहेंगे—"देखिये जी, हमारा सामाजिक विधान बहुत ठीक है, क्योंकि स्त्री और पुरुष एक दूसरे का

हाथ बटाते हैं। स्त्री घर और बाल-बच्चों को सम्भालती है और पुरुष बाहर के काम काज देखता भालता है।"

कहने को तो यह बात ठीक है, परन्तु देखना यह है कि यह बटवारा हमने एक-दूसरे की अनुमति से किया है, या पुरुष ने बलपूर्वक स्त्री को इस स्थिति में बिठा रखा है। यदि हम मनुष्य जाति के विवाह-सम्बंधी इतिहास का अध्ययन करें तो हमारी आखें खुल जाएगी कि किस तरह जब से संसार की उत्पत्ति हुई है, पुरुष सदा स्त्री पर अत्याचार करता आया है। पुरुष ने नारी को सदा अपने दबाव में रखा है। पिछली एक आध शताब्दी में ही हम देखते हैं कि नारी ने अपनी हालत को सुधारने का थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया है। परन्तु पुरुष सदा उसकी स्वतन्त्रता का विरोध करता आया है—क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपना शासन और प्रभुत्व छोड़ना पसन्द नहीं करता। यह सब कुछ होते हुए भी पुरुष यही कहते रहते हैं कि पुरुष और स्त्री एक दूसरे का हाथ बटाने वाले हैं। यदि हम किसी स्त्री से इस प्रश्न के सम्बन्ध में पूछें तो हमें पता लगे कि वे क्या महसूस करती हैं। परन्तु पुरुष नारी के मन का वास्तविक भाव जानने का प्रयत्न ही कब करता है?

दुर्भाग्य से हमने यह समझ लिया है कि लड़की युवावस्था में पाव रखते ही 'फिसल' जाती है। इसलिये विवाह से पूर्व हम उसे मा-बाप की क़ैद में रखते हैं और विवाह के बाद पति की क़ैद में। परन्तु नारी-हृदय स्वभाव से दूषित एवं पापमय नहीं होता। नारी के हृदय में भी वे ऊची ऊची और महान् अभिलाषाए ठाठें मारती

हैं जिनको हम कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। हम स्त्री को मा, बहन, बेटी या पत्नी के रूप में देखते हैं, कभी उसे केवल-मात्र 'नारी' के रूप मे नहीं देख पाते। यही कारण है कि हम सदा उसे सदेह की दृष्टि से देखते हैं।

आजकल भी जब अच्छे पढ़े लिखे, समझदार लोग इस समस्या पर विचार विनिमय करते हैं तो बडे जोश के साथ यह विचार प्रकट करते हैं कि नारी का उचित क्षेत्र घर ही है। हा, यदि कोई उन्हें आजकल की पढ़ी लिखी लड़कियों अथवा विलायत की लडकियों के महान् कार्यों की बातें सुनाता है तो वे उन्हें बडे चाव और हर्ष के साथ सुनते हैं। परन्तु फिर भी वे यह नहीं चाहते कि उनके अपने घर की लड़किया वैसे ही साहस के, देश-सेवा के, अथवा आत्मोन्नति के कार्य करें। दूसरी लड़कियों को महान् कार्य करते हुए, युद्ध मे भाग लेते हुए, ऊची ऊची उपाधिया प्राप्त करते हुए, हवाई जहाज चलाते हुए देखकर हम लोग मुक्त-कठ से उनकी प्रशसा करने को तैयार हैं, परन्तु हमे यह सहन नहीं है कि हमारी स्त्रिया उस प्रकार के कार्य करें—क्योंकि ऐसा करने से वे हमारे हाथों मे से निकल जावेंगी। अर्थात इस मामले में भी हमने दो कसौटिया रखी हुई हैं—एक दूसरे देशों की अथवा अपने देश के प्रगतिशील लोगों की स्त्रियों के लिये, और दूसरी अपने घरों की स्त्रियों के लिये।

पुरुष जाति का भला क्या अधिकार है कि वह स्त्री-जाति के लिये सब तरह के नियम-कानून बनाकर उन्हें उन पर चलने के

लिये विवश करे। यह कितना घोर अनर्थ है कि मनुष्य-जाति की एक श्रेणी दूसरी श्रेणी पर इतने अत्याचार कर रही है कि दूसरी श्रेणी पर नहीं मार सकती। यदि कोई स्त्री कभी मुँह खोलने का साहस कर बैठे तो पुरुष तुरन्त कह देता है, "खबरदार, जो सर उठाया तो। तेरा रोटी-पानी बन्द कर दूंगा और घर से बाहर निकाल दूंगा।" इस पर हम दावा करते हैं कि स्त्री-पुरुष एक ही गाडी के धुरे के दो सिरे हैं अथवा समाज रूपी रथ के दो पहिये हैं। स्त्रियों को भी अपना निर्णय स्वय करने दो और उन्हें इस बात का अवसर दो कि वे आपस में मिल-बैठकर कोई ऐसा सामाजिक विधान बनाएं जिससे पुरुष तथा स्त्री दोनों सुखी हों। यदि हम अपनी हठ पर इसी तरह अडे रहे तो वह दिन दूर नहीं जब स्त्री पुरुष को उसी तरह अपने पजे में दबाकर रखेगी जिस तरह आज तक पुरुष ने स्त्री को रखा है। इस बात के चिन्ह दिखाइ भी देने लग गए हैं।

स्त्रियों की दिन-चर्या

स्त्रियों को यदि घर के काम धन्धों से तनिक भी अवकाश न मिले और अपनी सखी-सहेलियों तथा आस-पड़ौस की मिलने-जुलने वाली स्त्रियों के यहा जाकर उनके साथ थोड़ी-बहुत देर उठने-बैठने और गपशप लगाने का अवसर न मिले तो नि सदेह उनका जीवन इतना रूखा-फीका हो जाए कि वे झुर झुर कर ही मर जायँ। स्त्रिया कभी अकेली नहीं रह सकतीं—अकेलापन उनके लिये मृत्यु के सदृश है। वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक मिलनसार होती हैं। पुरुष अकेला रह सकता है—बल्कि कई पुरुष तो अकेले ही रहना पसन्द करते हैं—किन्तु स्त्री कोई-कोई ही एकान्त प्रिय होती है। और यदि कोई स्त्री ऐसी हो भी तो उसे आस-पडौस की स्त्रिया तग करती रहती हैं। स्त्रिया बहुत जल्दी एक-दूसरी के साथ भाई-चारा डाल लेती हैं। वे एक-दूसरी के साथ लड़ भी बहुत जल्दी पड़ती हैं परन्तु फिर वे मन भी बहुत जल्दी जाती हैं। लडाई तो उनकी जान है और उनका गहरा प्रेम उसी के साथ होता है जिसके साथ एक-दो बार वे लड़ चुकी हों।

स्त्रियों की पारस्परिक मित्रता भी बडे विलक्षण ढग की होती है। यदि आप कभी उनका पारस्परिक लेन देन, भाजी आदि का

आदान प्रदान देखें और उनकी बातें सुनें तो आश्चर्य चकित रह जाएँ। चूल्हे-चौके के काम से निवृत्त होकर एक महिला बाहर गली-मुहल्ले में निकलती है और निश्चित ठिकाने पर पीढ़ी-चारपाई डालकर बैठती है। फिर वह औरों को बुलाना शुरू करती है। "अरी ओ रानी की माँ! अरी निकल भी घर में से। आज तुझे क्या हो गया है?" रानी की मा अन्दर से ही उत्तर देती है, "आई री आई! क्या करूँ इस मुन्ने ने तो मुझे खा लिया। न रात को सोने देता है, न दिन को आराम से बैठने देता है। इसे सुलाकर अभी आई।"

फिर दूसरी को आवाज दी जाती है, "ओ बन्सो की मा, अरी आज क्या तेरे पाँव में काटे लग गये? और दिनों तो तू सब से पहले आया करती थी। आज क्या हो गया है तुझे?" बन्सो की मा मकान की चोखट पर आकर खड़ी हो जाती है और कहती है, "बहन क्या करूँ? ये मेरे रोज-रोज के मेहमान मुझे तो जाने न देंगे। उनकी जान को रो रही हूँ। मैं भी मैके चली जाऊँगी तो कुछ सुख का सास मिलेगा। और फिर उन्हें भी आटे दाल का भाव मालूम हो जाएगा। जब पीछे से बाजार की रोटियाँ खानी पड़ेंगी तब होश आएगा। रोज पीटती हूँ कि कोई नौकर रख लो मेरे से सारा दिन चूल्हे के पास नहीं बैठा जाता। पता नहीं परमात्मा ने औरत क्यों बनाई थी।"

फिर शीला की भाभी का नम्बर आता है। वह चिल्लाकर कहती है, "बहन, क्या बताऊँ, आज मेरी ननद ने सुसराल जा

है। उसके वास्ते 'वे' बाजार से कुछ लेने गये थे, अब तक वापस नहीं आए हैं। क्या करें, ननद रानी का तो कभी पेट भरता ही नहीं। जब आती है कपडे भी ले जाती है, चीजें भी ले जाती है, मुट्ठी भर कर रुपये भी देते हैं, फिर भी नाराज ही रहती है। उसके बच्चों की हथेली पर कुछ न रखो तो मुँह चढ़ा लेती है। कभी कहती है मुझे बनारसी साडी ले दो, कभी यह, कभी वह, बस पूछो ही मत। उसके हुक्म तो पूरे होते ही नहीं। भुक्खमरी कहीं की, यह तो किसी तरह भी नहीं रुकती। ससुराल से चिट्ठी लिख लिखकर भी चीजें मँगाती रहती है। हमारा अपना गुजारा बड़ी मुश्किल से होता है, बताओ इसका नित नया तक़ाज़ा कहा से पूरा करें। भाई हैं कि सारा घर उठाकर बहन को दिये चले जा रहे हैं, अपने घर का उन्हें ख्याल ही नहीं है। मेरे तो कपडे फटे हुए हैं, क्या मजाल जो कभी एक मोटी धोती लाकर मुझे दी हो। इधर उधर से थोडे बहुत पैसे बचाकर मैं स्वय ही फेरी वाले से अपने लिए कपड़ा लत्ता खरीद लूँ तो भले ही खरीद लूँ। मेरे लिये तो कपडे खरीदने की उन्होंने जैसे क़सम खा रखी है। हा, बहन के लिये बढ़िया से बढ़िया कपड़ा आ ही जाता है।"

इतने में रानी की मा आ जाती है और उधर से बन्सो की मा आ पहुँचती है। अब बाजार पूरी तरह गरम हो जाता है। साथ-साथ नाले दुपट्टे काढ़ती या स्वेटर बुनती जाती हैं और साथ ही अपनी राम-कहानी सुनाती जाती हैं। किसी की स्तुति करती हैं, किसी की निन्दा। स्तुति कम और निन्दा अधिक होती है।

बस, यही कुछ है स्त्रियों की बातों का क्षेत्र। शीला की भाभी बात छेड़ती है, "भई, सोमा की मा ने अपनी बेटी को बड़ा कुछ दिया। सत्रह तीयल, सोने के कडे, टीका, गलसरी, झुमके की जोड़िया, जारजट की और बनारसी साडिया। लड़के के भी कई सूट थे। साथ ही उसकी घडी, सोने के बटन और बहुत बरतन तो अनगिनत थे—थाल, गिलास, कटोरियाँ, परात, कूंड, पिरच-प्याले और न जाने क्या कुछ था! तूने तो देखा ही था बन्सो की माँ।"

"अरे सब देखा था," बन्सो की माँ नाक भौं चढ़ाकर कहती है, "यूँ ही फैलाव फैला रखा था, अन्दर तो कुछ भी नहीं था। सारे बर्तन इतने हल्के थे कि पूछो ही मत। और जेवर तो सब गिन्नी के थे। और अन्दर चाँदी ही भरी हुई हो तो कौन जाने।"

शीला की भाभी भी अब बन्सो की मा की हाँ मे हाँ मिलाकर कहती है, "हाँ, हो सकता है चाँदी भरी हुई हो। हमने कौन से तोड़-तोडकर देखे थे। और फिर बेचारी सोमा की माँ करती भी क्या। जिसके पास जितना होगा वह उतना ही तो देगा।"

रानी की माँ बीच में ही बोल उठती है, "सोमा की माँ ने क्या खाक दिया है! इतनी ऊँची नाक वाली बनी हुई थी—इतना लम्बा चौड़ा व्यापार चल रहा है उनका, उस पर यह भी कुछ देने में देना हुआ। यह देखा था तुमने—शान्ति की मा ने कितना दिया था! मोटर दी, लड़के को सोने की घड़ी दी, लड़की को बीसियों साड़ियाँ—एक से एक बढ़िया।"

बन्सो की माँ कहती है, "हाँ, हाँ, मैंने भी वह दहेज देखा था। उन्होंने तो साथ में सोफ़ा-सैट भी दिया था। शान्ति को तो बहुत कुछ मिला था।" शीला की भाभी फिर बीच में बोल उठती है, "तो फिर बेचारी सोमा को क्या मिला—ख़ाक!"

स्त्रियाँ हाँ में हाँ मिलाने में इतनी सिद्ध-हस्त होती हैं कि क्षण भर में ही अपनी कही हुई बात के बिल्कुल विरुद्ध बात की हाँ में हाँ मिलाने लग जाती हैं।

इसी प्रकार की बातें करते हुए स्त्रियों का दिन तुरन्त बीत जाता है। किसी की धी-बेटी को ससुराल जाना हुआ तो वहां 'शगन' आदि लेकर पहुँच गई। 'शगन' लेने वाली का भी परम कर्तव्य होता है कि दो चार बार ना-ना करे। फिर उसे 'शगन' लेना ही पड़ता है।

शहर के किसी भाग में किसी के यहा, जिससे थोडी-बहुत भी जान पहचान हो, यदि मृत्यु हो जाती है तो सोग मनाने वहाँ जाना जरूरी होता है। सब बाल-बच्चों को घर पर छोड़कर मृतक के घर जाकर घण्टों विलाप करना और रोना-पीटना पड़ता है। पता नहीं स्त्रियों को अचानक रोना कहा से आ जाता है। चाहे स्वर्गवासी से उनका साधारण सा और बहुत दूर का ही सम्बन्ध हो, परन्तु वे इस तरह आँसू बहाएगी जैसे उन्हें बडी गहरी मार्मिक चोट पहुँची है। रो-रोकर आसुओं के दरिया बहा डालती हैं। 'पल्ला'

आवश्यकता हुई तुरन्त आसू बहा दिये—और जितनी देर चाहें उतनी देर—घण्टों—रो सकती हैं।

सियापे-सोग से वापिस आते हुए रास्ते मे जीतो की मा मिल गई, "अरी! ईश्वर देवी के लडका हुआ है। वहा नहीं चलना है क्या? चलो बधाई दे आए।" बस, सारा का सारा झुण्ड ईश्वर देवी के यहा चल पड़ा। वहा पहुँचकर सब स्त्रिया ईश्वर देवी को सौ-सौ बधाइया देती हैं। उसके चाँद जैसे पुत्र को देख कर वारी-वारी जाती हैं। वह मुँह मीठा कराती है और उन्हीं स्त्रियों के मन, जो अभी घण्टा भर पहले आसुओं के दरिया बहा रहे थे, अब हर्ष विभोर हो उठते हैं। शाम के समय घर लौटकर ये महिलाए अपने-अपने कुटुम्ब के लिये खाना पकाने के कार्य में जुट जाती हैं।

यह है हमारे घरों में स्त्रियों का नित्य-कर्म। इनका सारा जीवन इसी तरह व्यतीत होता है।

हमारा देश कैसे उन्नति करेगा, जहा नारी-जाति के जीवन की यह दिनचर्या हो। अपने अमूल्य जीवन को इस तरह व्यर्थ के कामों में गवाते हुए उन्हें अपने बच्चों की देख भाल और शिक्षा के प्रति ध्यान देने के लिये समय कैसे मिल सकता है? कैसे हमारी स्त्रिया देश-सुधार के कार्यों मे दिलचस्पी ले सकती हैं और देश के पुनर्निर्माण की योजनाओं मे हाथ बटा सकती हैं? इस बात की बड़ी सख्त जरूरत है कि स्त्रिया अपने दैनिक

अवकाश के समय को अच्छे कामों में लगाए—पुस्तकों का अध्ययन करें, अपने बच्चों को विद्या पढ़ाएं, घर को स्वच्छ, सुन्दर बनाएं, और अन्य लाभप्रद तथा आत्मोन्नति के कार्य करे। इसलिये पहले स्वय उन्हें समुचित शिक्षा प्रदान करनी होगी।

सास, ननद और जेठानियाँ

सास-बहू, ननद-भावज और देवरानी-जेठानी की आज तक नहीं बनी। एक दूसरी का सदा बैर भाव ही रहा है। जब ये लड़ती हैं तो एक दूसरी के अगले-पिछलों को धुन डालती हैं। इस बैर के कारण कई घरों का नाश हो जाता है। इस पारस्परिक कलह के कारण गृहस्थ-जीवन को हमने नरक बना दिया है।

लड़कियों को छोटी अवस्था से ही मातायें यह सिखाना प्रारम्भ कर देती हैं कि सास बहुत बुरी होती हैं, ननदें भी बहुत खराब होती हैं और जेठानियाँ बैरिन होती हैं। अपनी सास-ननद और जेठानियों के प्रति अपने व्यवहार से मातायें अपनी पुत्रियों के मन पर पूरी तरह अंकित कर देती हैं कि सास-बहू, ननद-भावज और देवरानी-जेठानियों का सदा झगड़ा रहता है। गृहस्थ-जीवन के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीत भी इन्हीं भावनाओं को लिये हुए होते हैं।

छोटी आयु में ही जब ये विचार लड़कियों के मस्तिष्क में भर जाते हैं तो फिर बड़े होने पर उनका निभाव सास आदि के साथ कैसे हो सकता है? यदि माँ कभी बेटी पर क्रोध भी करती है तो उसे यही कहती है "अगले घर जाकर तेरा कैसे निभाव होगा? तू ऐसा करेगी तो सास नोचकर खा जाएगी"। लड़के

को ससुराल एक 'हौवा' बनाकर दिखाई जाती है जहाँ हर कोई उसे काट खाने को दौड़ेगा। जब माताएँ और सहेलियाँ लड़कियों को यह शिक्षा देकर ससुराल भेजती हैं तो यह प्रगट है कि वे वहाँ जाकर किस प्रकार का आचरण और व्यवहार करेंगी। सास-बहू, ननद भावज और देवरानी-जेठानियों का आपस में क्यों कलह होता है? उनका पारस्परिक विरोध कैसे प्रारम्भ हुआ? माताएँ अपने पुत्रों का विवाह ही इस विचार को लेकर करती हैं कि "बहू आएगी, कुछ मालताल लाएगी, हमारा हाथ कुछ हल्का होगा, हम पलँग पर बैठेंगी, बहू आप खाना बनाएगी, हमें खिलाएगी और हमारी सेवा करेगी।" जब बहू आती है तो उसका सारा दहेज सास हथिया लेती है ताकि वह उसे अपनी बेटी के दहेज में दे सके। पहले कुछ दिन बहू की खूब खातिर होती है, फिर उसको झाड़ें मिलनी धीरे २ प्रारम्भ हो जाती हैं। फिर यह झाड़ और कहना सुनना दिन दिन बढ़ता जाता है। यदि बहू पेट भर रोटी खाये तो बोली मारी जाती है, यदि वह तनिक आराम करने बैठ जाये तो उसे तंग किया जाता है, यदि वह कभी दरवाजे की चौखट पर खड़ी दिखाई दे जाय तो समझो उसकी शामत आ जाती है। बहू के विरुद्ध सब झूठी-सची शिकायतें सुनी जाती हैं। कोई छोटा बच्चा भी आकर कुछ शिकायत करदे, तो तुरन्त उस बहू को लताड़ा जाता है और उसके मायके वालों को वे बात खरी खोटी सुनाई जाती है। सासें अपनी बहुओं को नौकरों से भी परे समझती हैं। यदि उसके

सास, ननद और जेठानियाँ

सास-बहू, ननद भावज और देवरानी-जेठानी की आज तक नहीं बनी। एक दूसरी का सदा बैर-भाव ही रहा है। जब ये लड़ती हैं तो एक दूसरी के अगले-पिछलों को धुन डालती हैं। इस बैर के कारण कई घरों का नाश हो जाता है। इस पारस्परिक कलह के कारण गृहस्थ-जीवन को हमने नरक बना दिया है।

लड़कियों को छोटी अवस्था से ही मातायें यह सिखाना प्रारम्भ कर देती हैं कि सास बहुत बुरी होती हैं, ननदें भी बहुत खराब होती हैं और जेठानियाँ बैरिन होती हैं। अपनी सास-ननद और जेठानियों के प्रति अपने व्यवहार से मातायें अपनी पुत्रियों के मन पर पूरी तरह अंकित कर देती हैं कि सास-बहू, ननद-भावज और देवरानी-जेठानियों का सदा झगड़ा रहता है। गृहस्थ जीवन के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीत भी इन्हीं भावनाओं को लिये हुए होते हैं।

छोटी आयु में ही जब ये विचार लड़कियों के मस्तिष्क में भर जाते हैं तो फिर बड़े होने पर उनका निभाव सास आदि के साथ कैसे हो सकता है? यदि माँ कभी बेटी पर क्रोध भी करती है तो उसे यही कहती है "अगले घर जाकर तेरा कैसे निभाव होगा? तू ऐसा करेगी तो सास नोचकर खा जाएगी"। लड़की

को ससुराल एक 'होवा' बनाकर दिखाई जाती है जहाँ हर कोई उसे काट खाने को दौड़ेगा। जब माताएँ और सहेलियाँ लड़कियों को यह शिक्षा देकर ससुराल भेजती हैं तो यह प्रगट है कि वे वहाँ जाकर किस प्रकार का आचरण और व्यवहार करेंगी। सास-बहू, ननद भावज और देवरानी-जेठानियों का आपस में क्यों कलह होता है ? उनका पारस्परिक विरोध कैसे प्रारम्भ हुआ ? माताएँ अपने पुत्रों का विवाह ही इस विचार को लेकर करती हैं कि "बहू आएगी, कुछ मालताल लाएगी, हमारा हाथ कुछ हल्का होगा, हम पलँग पर बैठेंगी, बहू आप खाना बनाएगी, हमें खिलाएगी और हमारी सेवा करेगी।" जब बहू आती है तो उसका सारा दहेज सास हथिया लेती है ताकि वह उसे अपनी बेटी के दहेज में दे सके। पहले कुछ दिन बहू की खूब खातिर होती है, फिर उसको झाड़ें मिलनी धीरे २ प्रारम्भ हो जाती हैं। फिर यह झाड़ और कहना सुनना दिन दिन बढ़ता जाता है। यदि बहू पेट भर रोटी खाये तो बोली मारी जाती है, यदि वह तनिक आराम करने बैठ जाये तो उसे तँग किया जाता है, यदि वह कभी दरवाजे की चौखट पर खड़ी दिखाई दे जाय तो समझो उसकी शामत आ जाती है। बहू के विरुद्ध सब झूठी सच्ची शिकायतें सुनी जाती हैं। कोई छोटा बच्चा भी आकर कुछ शिकायत करदे, तो तुरन्त उस बहू को लताड़ा जाता है और उसके मायके वालों को वे बात खरी खोटी सुनाई जाती है। सासें अपनी बहुओं को नौकरों से भी परे समझती हैं। यदि उसके

पति को थोड़ी-सी भी तकलीफ़ हो जाय तो बहू का जीना दूभर कर दिया जाता है। उसको ऐसी बोलियाँ सुनाई जाती हैं मानो अपने पति की बीमारी के लिये वही ज़िम्मेदार है। यह है व्यवहार हमारे घरों में सासुओं का अपनी बहुओं के प्रति। सासुओं का यह सिद्धान्त है कि जब तक बहुओं के साथ कठोर व्यवहार न करो और उन पर डंडा न बरसाते रहो तब तक बहुओं का दिमाग़ ठीक नहीं रहता।

ननदों का सदा से यह सिद्धान्त चलता आया है कि भौजाइयों को चाहिये कि वे मायके में से सब कुछ झाड़ू लगाकर उठा लायें। यदि कभी किसी अवसर पर भावज कुछ कम सामान लावे तो सारी गली मुहल्ले में उसकी बुराई करना वे अपना परम धर्म समझती हैं। दूसरा परम कर्तव्य उनके सामने यह रहता है कि भौजाई के विरुद्ध भाई को हर समय उकसाती और भड़काती रहें, चाहे उसकी झूठी शिकायतें ही क्यों न करनी पड़ें। यदि पति अपनी पत्नी की कभी तरफ़दारी करे तो बहिन भाई के विरुद्ध भी तूफ़ान मचा देती है।

भाइयों भाइयों के जायदाद आदि सम्बन्धी झगड़े आपस में होते रहते हैं। ऐसे अवसरों पर देवरानियाँ-जेठानियाँ बड़े यत्न से आग पर तेल डालने का काम करती हैं। वे पूरी कोशिश करती हैं कि आपस में समझौता न होने पाये। पति के घर में आते ही पत्नी उसे उसके भाइयों के विरुद्ध दो चार झूठी सची लगाने का काम अति आवश्यक समझती हैं। आपस में लड़ने के लिये,

देवरानी-जेठानियों को यदि और कोई बहाना न मिले तो एक दूसरी के बच्चों पर ही बरस पड़ती हैं। बस लड़ने का रास्ता अपने आप ही खुल गया।

यह बात नहीं है कि सास, ननद और जेठानियाँ ही खराब होती हैं और बहुएं, भौजाइयाँ और देवरानियाँ बेचारी बड़ी निर्दोष और अबोध होती हैं। ताली हमेशा दोनों हाथों से बजती है। जहाँ लड़ाई-दँगा एवं कलह हो वहाँ समझ लो प्राय दोनों दलों का दोष है—चाहे किसी एक दल का दोष अधिक हो चाहे थोड़ा। कई बहुएं भी बड़ी बेढब होती हैं। यही बात बहुत सी भौजाइयों के सम्बन्ध मे कही जा सकती है। बहुधा सास, ननदें और जेठानियाँ तो अत्याचार करती ही हैं किन्तु बहुएं, भौजाइयाँ और देवरानियाँ भी कुछ कम नहीं होतीं।

लड़कियों को हम विवाह से पहले ही यह सिखा-पढा कर भेजते हैं कि उसे ससुराल मे जाकर सास आदि का किस तरह सामना करना चाहिये। फिर उसे अपने, अर्थात माता पिता के घर में, भी वही कुछ नित्य प्रति देखने को मिलता है। परिणाम यह होता है कि वह ससुराल जाते ही उसी प्रकार का आचरण करने लग जाती है जिसका उसके मन पर ठप्पा लगा हुआ होता है। फिर जो आज बहू हैं, वे कल सास बन जाती हैं और तब वे अपनी बहुओं के साथ वैसा ही व्यवहार करती हैं जैसा कि उनकी सास ने उनके साथ किया था। जो स्त्री अपनी ननदों के व्यंग-बाणों से सताई हुई है वह अपने मायके जाकर अपना क्रोध

अपनी भौजाई पर निकालेगी। देवरानी-जेठानियाँ तो अपना हिसाब तुरन्त बराबर कर लेती हैं। मेल-जोल बढ़ाना और लड़ाई मोल लेना तो स्त्रियों की जान है, इसके बिना उन्हें खाना हजम नहीं होता।

वास्तविक बात यह है कि हमारी रिश्तेदारी की नींव ही गलत नियमों पर रखी हुई है। सास उस बहू से प्रसन्न रहती है जो अपने मायके का घर बुहारकर अपने ससुराल का घर भर दे। ननद उसी भौजाई को पसन्द करती है जो उसे मुँहमागी चीजें देती रहे और कभी इन्कार न करे। जेठानी को भी वही देवरानी भाती है जो घर की चीजों में से कोई हिस्सा न माँगे बल्कि अपना माल देती चली जाय। हमारे सारे कौटुम्बिक सम्बन्धों की नींव लेन देन के ऊपर है।

जहाँ लोभ और स्वार्थ हो वहाँ सच्चा प्रेम कैसे हो सकता है?

विद्या

आजकल स्त्री शिक्षा का बहुत प्रचार हो रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ वर्षों तक हमारी सब बहनें पढ़ जाएँगी और लडकियों के लिये विद्या प्राप्ति उतनी ही आवश्यक समझी जावेगी जितना आजकल उनके लिये दहेज समझा जाता है। देश में स्थान-स्थान पर लडकियों के लिये स्कूल-कालिज खुल रहे हैं। लड़कियों में विद्या के लिये रुचि इतनी बढ़ गई है कि जहा उनके लिये अभी अलग स्कूल-कालिज नहीं खुल सके हैं वहाँ वे लड़कों के स्कूल-कालिजों मे ही दाखिल हो जाती हैं। कई स्कूल-कालिजों में स्थान के अभाव के कारण प्रवेश बन्द कर दिया जाता है, वहाँ बेचारी लडकियाँ 'प्राइवेट' स्कूल-कालिजों में दाखिल हो जाती हैं। बडे बडे शहरों में इन 'प्राइवेट' स्कूलों व कालिजों की सख्या, विशेषकर केवल लडकियों के स्कूलों व कालिजों की सख्या, दिन प्रतिदिन बढ़ रही है—इसके अतिरिक्त प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में यूनिवर्सिटियों की विभिन्न परीक्षाओं मे बैठने की प्रथा भी लडकियों में बहुत प्रचलित हो गई है।

लड़कियों मे दो तरह की पढ़ाई दिनों दिन बढ़ रही है। शहरों में सवेरे साइकिलों पर, बसों में या पैदल ही लडकियों के दल के दल स्कूलों व कालिजों की ओर लपकते दिखाई देते हैं।

गाँवों में अभी स्त्री शिक्षा का इतना प्रचार नहीं हुआ है, परन्तु बडे-बडे गाँवों में भी अब लड़कियों के छोटे-मोटे स्कूल खुलते जा रहे हैं। साराश यह कि स्त्रियों में विद्या प्राप्ति के लिये काफी लगन पैदा हो गई है। हमे आशा रखनी चाहिये कि कुछ वर्षों के पश्चात् स्त्रिया भी पुरुषों की भाति सब प्रकार के पदों पर सुशोभित दिखाई देंगी। स्त्रिया देश के राजनैतिक, धार्मिक, सास्कृतिक तथा अन्य सब प्रकार के कार्यों में भाग लेंगी और सब क्षेत्रों मे अपनी प्रतिभा के चमत्कार दिखाएँगी। इसी प्रकार वे साहित्य के क्षेत्र में भी आगे बढ़ेंगी और उनकी सुन्दर रचनाओं से साहित्य की श्री-वृद्धि होगी। अर्थात् स्त्रिया प्रत्येक क्षेत्र मे अपना कौशल उसी तरह दिखाएगी जिस तरह आज तक पुरुष दिखाते आए हैं। परन्तु यह आशा हम तभी रख सकते हैं जब स्त्रियों की वर्तमान शिक्षा-दीक्षा ठीक मार्ग पर चल रही हो और उसमे कोई त्रुटिया एवं दोष न हों।

स्त्री शिक्षा भी हमारे यहा विलक्षण ढग से शुरू हुई है। हम प्राय लड़कियों को इस विचार से नहीं पढ़ाते कि उनका पढ़ना उतना ही आवश्यक है जितना लडकों का। हम कहते हैं कि "लड़कियों ने पढ़ लिखकर कौन-सी नौकरी करनी है।" हम उन्हें वास्तव मे इसलिये पढ़ाते हैं कि अनपढ़ रह जाने से उनका सम्बन्ध अच्छे लड़के से और अच्छे घर में होने मे कठिनाई होती है। आजकल के लड़के ऐसे 'बिगड' गए हैं कि वे पढ़ी लिखी लड़की माँगते हैं। माँ-बाप बेचारे देख देखकर कुढ़ते रहते

हैं। जमाना ऐसा खराब आ गया है कि किसी लडके से रिश्ता करने की बात कहो या किसी के द्वारा कहलाओ तो पहला प्रश्न वह यही पूछता है कि लड़की कितनी पढी हुई है। मा-बाप इसी डर से जिस तरह भी हो सके अपनी बेटियों को विद्याध्ययन कराते हैं। जब तक लडकी का सम्बन्ध नहीं हो जाता तब तक घर वालों की जान को बडा झंझट रहता है। लोग सौ-सौ तरह की बातें करने लगते हैं। मा को तो रातों नींद नहीं आती। यदि लड़की कुछ बड़ी हो जाए तो उसके विवाह की चिन्ता सब को दिन-रात सताती है—न खाने पीने का सुख, न सोने-बैठने का आराम, न घूमने फिरने का आनन्द। चौबीसों घंटे 'लडके' की 'तलाश' होती रहती है। लडके मिलने भी आजकल कौन-से आसान हैं। जिस लडके से भी बात करो वह पढी लिखी लड़की माँगता है। बस, इसीलिये हम लडकियों को पढाते हैं—ताकि उनका रिश्ता होने मे कठिनाई न हो। या इस तरह भी होता है कि यदि लड़की का रिश्ता पहले कहीं हुआ-हुआ हो और वह लडका बहुत पढ़ जाए या किसी अच्छी नौकरी पर लग जाए तो लड़की के मा-बाप को चिन्ता हो जाती है कि कहीं ऐसा न हो कि लड़की के कम पढ़ी या अनपढ़ होने के कारण लड़का रिश्ता छोड दे। लडके के इस सम्भावित एतराज को दूर करने के लिये लड़की के मा बाप उसे पढ़ाने के लिये विवश हो जाते हैं।

आजकल लडकियों में हम विद्याध्ययन का जितना चाव देख रहे हैं वह मुख्यतया देखा देखी है। एक लड़की को शिक्षा प्राप्त

करतीं और जिनका बस चल जाए वे करती भी नहीं, वे घर क
धन्धा करने से घबराती और काम-काज से घृणा करती हैं, घर
को नहीं सम्भालतीं, फैशन की पुजारिनें बन जाती हैं, सैर, तमाशे
सिनेमाओं मे समय गवाती फिरती हैं, फिजूल-खर्च हो जाती है
उनमे बडा दम्भ और अकड़ पैदा हो जाती है, मा बाप और सास
ससुर आदि का आदर सम्मान नहीं करतीं, हरेक के साथ खिड़
खिड़ हँसती और खुले तौर पर बात करती हैं, बड़ी झगड़ालू
जाती हैं, कहना नहीं मानतीं, उनमे लाज लज्जा बिल्कुल न
रहती, सबके सामने ही पति से खुले तौर पर बात करती हैं औ
उसकी बाह में बाह डालकर सैर करने निकल जाती हैं, कि...
आए-गए की परवाह नहीं करतीं, सगे-सम्बन्धियों के साथ उचित
व्यवहार करना और रीति रिवाज के अनुसार लेना-देना उन्हें नहीं
आता, मुकान जाना और सोग मनाना व स्यापा करना उन्हें
नहीं आता, कुर्सी-मेजों के बिना वे बैठ नहीं सकतीं, अपने धर्म
कर्म का इन्हें तनिक भी ख्याल नहीं, पूर्वजों के सब रीति रिवाज ये
छोड़ देती हैं, साधु, सन्त, महात्माओं, गुरुओं में इन्हें श्रद्धा नहीं,
मन्दिर आदि में जाने का इन्हें जरा भी चाव नहीं, इत्यादि कई
प्रकार के आक्षेप आजकल पढ़ी लिखी लड़कियों पर लगाए जाते
हैं। कहा यह जाता है कि जो लड़किया स्कूल-कालिजों मे पढ़ती हैं
और विशेष करके शहरों म—उनमे ये सब बातें पाई जाती हैं।
इसीलिये, उन लोगों के अ... ...प समझदार होते हैं
अपनी लड़... ... पढ़ाकर स्कूल से उठा

लेते हैं और फिर उन्हें घर पर पढाकर 'प्राइवेट' परीक्षा दिलाते हैं।

उपरोक्त आक्षेपों मे से कितने सारयुक्त हैं और कितने निस्सार, इस पर यहाँ अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इस बात से कोई व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता कि वर्तमान स्त्री-शिक्षा ने हमारे घरेलू और सामाजिक जीवन मे कोई सुधार नहीं किया है। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि अधिक पढी-लिखी लड़कियाँ भाई चारे और पारिवारिक सम्बन्धों को त्याग देती हैं, और दूसरी बात यह है कि या तो वे विवाह करती ही नहीं, या करती हैं तो उनमें से अधिकाश की पति से नहीं बनती। उच्च शिक्षित बहुत कम ऐसी लडकियाँ होती हैं जिनका घरेलू जीवन सुखी होता है। शेष रही कम पढ़ी लिखी स्त्रियाँ। उनका सामाजिक और कौटुम्बिक जीवन वैसा ही होता है जैसा साधारण अनपढ़ स्त्रियों का। उन बेचारियों को न तो घर के काम-धन्धों से अवकाश मिलता है, और न वे कुछ आगे पढ लिख सकती हैं, बस, चिट्ठी पाती वे अवश्य पढ लेती हैं। अन्य कोई अन्तर उनके घरेलू एव सामाजिक जीवन मे दिखाई नहीं पड़ता।

वास्तविक बात यह है कि हमारी आधुनिक शिक्षा-पद्धति हमारे सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। हम लोग लड़कों को इसलिये पढाते हैं कि वे रोजगार के योग्य हो जावें। और लड़कियों को इसलिये पढाते हैं कि उनका रिश्ता करने में हमें

सुविधा हो जावे। हमारे स्कूल-कालिजों की पाठ्य प्रणाली ऐसी है कि उसके द्वारा न लड़कों को और न ही लडकियों को अपने-अपने कामों और कर्तव्यों का ज्ञान होता है। लड़के पढ़ते लिखते कुछ हैं—उन्हें सिर-खपाई कई विषयों में करनी पड़ती है—परन्तु इन विषयों में से कोई भी उनके काम नहीं आता। इसी प्रकार लड़कियाँ स्कूलों, कालिजों में जिन विषयों में सिर खपाती हैं उनका उपयोग व्यावहारिक जीवन में कुछ भी नहीं होता। जिन बातों से उन्हें अपने जीवन मे दो चार होना पड़ता है उनके सम्बन्ध में उन्हें कोई शिक्षा नहीं दी जाती। कितनी ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी जीवन क्षेत्र में पाँव रखते समय बिल्कुल अल्हड़ होती हैं। यदि उन्हें आगे चलकर बच्चे ही सम्भालने हैं तो क्यों न उन्हें तत्सम्बन्धी शिक्षा दी जाए। यदि उनके हाथों में घर का प्रबन्ध रहना है तो उन्हें क्यों न वह शिक्षा दी जावे जो घर सवारने, सुधारने और उसकी देख रेख करने में उनकी सहायक हो सके। यदि पढ़ी लिखी लडकियों को भी वैसा ही दुखमय जीवन बिताना पडे जैसा अनपढ़ लड़किया बिताती हैं तो फिर ऐसी विद्या से क्या लाभ? सब से पहले तो हमें यह विचार करना है कि हमारे सामाजिक और पारिवारिक जीवन मे स्त्री को क्या स्थान प्राप्त हो। फिर उसके अनुसार हमारी स्त्री शिक्षा की पद्धति और पाठ्य प्रणाली निश्चित होनी चाहिये। विद्या प्राप्ति स्त्रियों के लिये उतनी ही आवश्यक है जितनी पुरुषों के लिये, परन्तु दोनों की शिक्षा उनके कार्यों, कर्तव्यों और आवश्यकताओं के अनुसार होनी

चाहिये। जिन्हें ऊँची शिक्षा प्राप्त करके साहित्य अथवा किसी अन्य क्षेत्र में विशेषता प्राप्त करनी है, वे प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करें, शेष लड़कियों को वही शिक्षा मिलनी चाहिये जिसका सम्बन्ध उनके दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं से हो। मूल आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री के घरेलू और सामाजिक जीवन को सुखी बनाया जाए। इसलिये उन्हें वही शिक्षा मिलनी चाहिये जो उनके घरेलू और सामाजिक जीवन को सुखमय बनाने में सहायक हो और वे अपने घरों को सुखपूर्ण बना सकें।

सामाजिक सुधार और स्त्रियो का कर्तव्य

स्त्रिया सुधार-कार्य किस तरह कर सकती हैं? उनसे यदि बात करो तो वे कहती हैं कि हमारे सामाजिक ढाचे में स्त्रियों की इतनी दुरवस्था हो गई है कि वे कुछ करने योग्य रह ही नहीं गई हैं। सैंकड़ों वर्षों की दासता और पराधीनता ने उन्हें इतना निर्बल, असहाय बना दिया है कि वे अपने पावों पर खड़ी हो ही नहीं सकतीं। ऐसी अवस्था में वे सुधार करें तो किस तरह करें। इसके अतिरिक्त वे कह देती हैं कि लड़के बहुतेरा-कुछ सुधार कर सकते हैं, लड़कियों के हाथ मे तो कुछ भी नहीं है। विवाह सम्बन्धी मामलों में आजकल लड़कों से तो थोड़ा-बहुत पूछ भी लिया जाता है, परन्तु लड़कियों को तो कोई गिनता ही नहीं। लड़के शोर मचाकर, हाय-तौबा करके, अपनी कोई न-कोई बात मनवा भी लेते हैं, परन्तु लड़किया तो बोल ही नहीं सकतीं। वे तो बेचारी अनबोल हैं, उन्हें तो गौओं की भाति दान करके दे दिया जाता है। उनसे कभी कोई नहीं पूछता कि तुम्हारा विवाह करें या नहीं। न ही किसी जगह उनका रिश्ता करते समय उनकी अनुमति ली जाती है। वे अपने विवाह के सम्बन्ध में कोई बातचीत नहीं कर सकतीं। एक कँवारी लड़की के लिए यह घोर निर्लज्जता की बात समझी जाती है कि वह अपने विवाह

के सम्बन्ध मे कोई बात करे। साराश यह है कि स्त्री-जाति पूरी तरह पराधीन है, उसे सोचने की भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है।

जब तक स्त्रियां सामाजिक-सुधार की लहर म बहने के लिये स्वय तैयार न होंगी, तब तक उनका उद्धार नहीं हो सकता। माना कि पुरुष के अत्याचार और अनाचारों ने स्त्री को इतना दबा और गिरा दिया है कि उनके लिये उठना और अपने पाव पर खडा होना असम्भव दिखाई देता है। परन्तु हम उनसे पूछते है कि क्या वे उस शुभ दिन की आशा और प्रतीक्षा मे बैठी हैं जब सारे पुरुष हाथ जोड़कर उनसे विनती करेंगे कि आओ, स्वाधीनता ले लो और जो-जो अधिकार तुम्हें चाहिएँ, माग लो। ऐसा न कभी हुआ है, न कभी होगा। ससार मे जिस देश अथवा जाति में स्त्रिया आगे बढ़ी हैं, स्वय अपने साहस और प्रयत्नों से बढ़ी हैं। पुरुष कभी भी नारी का हाथ पकड़कर उसे ऊपर नहीं खींचेगा; नारी जब भी उठेगी, अपने साहस और आत्म बल से ऊपर उठेगी।

किसी भी सामाजिक कुरीति को ले लो—जब तक उसे दूर करने में स्त्री जाति सहयोग नहीं देगी वह दूर नहीं होगी। लेन देन के बुरे रिवाजों को लीजिए, जब तक स्त्रिया इन्हें दूर करने का दृढ़ सकल्प नहीं करेंगी ये रिवाज हमारा पीछा नहीं छोड़ेंगे। यदि पर्दे की प्रथा को दूर करने का प्रश्न है तो भी स्त्रियों के ऊपर यह बात निर्भर है। हम भले ही पर्दा प्रथा के विरुद्ध कितने ही

लेख लिखें, कितने ही व्याख्यान दें और कितना ही जोर लगावें, किन्तु यह प्रथा हटेगी उस दिन जिस दिन नारी इसका बहिष्कार करना चाहेगी। अन्य किसी सामाजिक कुरीति को ले लो—स्त्रियों की पूर्ण सहायता और सहयोग के बिना कोई भी कुरीति एव बुरी प्रथा दूर नहीं हो सकती। हमारी सारी सामाजिक रीति प्रथाओं की रक्षा करने वाली नारी ही हैं। पुरुष फिर भी समय की रौ के अनुसार अपनी दिशा बदल लेता है। परन्तु हमारी भारतीय नारी समय की रौ के सामने भी अपने स्थान पर अडिग, अटल खडी रहती है। यह गुण भी है और अवगुण भी। समय की नित्य-परिवर्तनशील हवा का तिरस्कार करके अपने नियमों पर अटल रहना प्रशसनीय गुण है। परन्तु एक सीमा के बाद यह गुण अवगुण बन जाता है। क्योंकि बदली हुई परिस्थिति में कई पुराने रीति रिवाज हानिकारक हो जाते हैं, उन्हें न छोड़ने से समाज रोगी हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में पुराने रिवाजों को पकडे रखना एक अवगुण हो जाता है।

हमारी सामाजिक रीति प्रथाओं का पालन करने मे हमारी स्त्रिया और भी अधिक कट्टर हैं। यदि हम उनमें सुधार करना चाहते हैं तो केवल स्त्रियों की सहायता और सहयोग से ही कर सकते हैं। इसलिए हमें सामाजिक-सुधार का आदोलन अधिकतर स्त्रियों के बीच मे ही चलाना चाहिए।

अब प्रश्न आता है कि स्त्रिया सुधार किस तरह करें ? घर में बड़ी-बूढ़ियों की ही चलती है, लड़कियों अथवा बहुओं की कोई

पूछता ही नहीं। यदि कोई लडकी बोलने का साहस कर बैठे तो बड़ी-बूढ़िया तुरन्त घर सिर पर उठा लेती हैं—"हाय! हाय! आजकल की छोकरियों को कैसी हवा लग गई है? इनका ढीठपन तो देखो, पुरखाओं के चलाए हुए रीति-रिवाजों में दोष निकालने लगी हैं। कैसा बुरा समय आ गया है! घोर कलियुग आ गया! कलियुग!!!" इस प्रकार की बातों का यह परिणाम होता है कि जो लड़किया कुछ अधिक शिक्षा प्राप्त कर लेती हैं वे अपने पति को लेकर अलग हो जाती हैं। यही नहीं, इन ऊटपटाग व्यगों से तग आकर वे बहुत से सगे-सम्बन्धियों के यहा जाना भी छोड देती हैं। अपने घर में वे जिस तरह चाहती हैं करती हैं। इसीलिये स्त्रिया आजकल की पढी लिखी लडकियों को पसन्द नहीं करतीं और इन्हीं बडी बूढ़ियों की कृपा से शिक्षित लडकिया बदनाम हो गई हैं। जो पढ़ी लिखी लडकिया कम साहसी होती हैं और जो बदनामी से और सगे सम्बन्धियों से डरती हैं वे मशीन की भाति बेचारी बे दिल बडी-बूढ़ियों के आदेशानुसार सब रीति रिवाज भुगताती रहती हैं। कभी वे अपने भाग्य को रोती हैं, कभी पति से लड़ती हैं कि अमुक प्रथा का पालन नहीं करना चाहिए, अमुक कार्य नहीं करना चाहिये, परन्तु कर कुछ भी नहीं सकतीं—कोल्हू के बैल की तरह सामाजिक व्यवस्था के चक्र में फसी रहती हैं।

ऐसी स्थिति में भला सुधार किस तरह हो सकता है? जो पढ़ी लिखी लड़किया सुधार करने की इच्छा करती हैं उन्हें या

तो सगे-सम्बन्धियों से अलग हो जाना पड़ता है, या फिर बदनामी के डर से चुप होकर बैठ जाती हैं। परन्तु वास्तव ये दोनों रास्ते गलत हैं। आवश्यक्ता इस बात की है कि सामाि सुधार करने की इच्छा रखने वाली नारिया मैदान में अ बदनामी का डर दिल मे से निकाल दें, सगे-सम्बन्धी और ग मुहल्ले वाले क्या कहेंगे, इस बात की ओर से आँखें बन्द लें, और निडरता और साहस से काम लेकर अपनी रिश्ते स्त्रियों, गली मुहल्ले वालियों और सहेलियों में अपने विचारों प्रचार करें, स्वय अगुआ बनकर बुरे रीति रिवाजों को त्यागें अ दूसरी स्त्रियों को प्रेरित करें कि वे भी इन कुरीतियों को छोड़ सुधार होगा तो इसी तरह होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है।

अब प्रश्न यह रहा कि बेचारी कुँआरी लड़किया क्या सकती हैं। इसका उत्तर शायद स्पष्ट है कि "जो कुआरे लड़ कर सकते हैं।" माना कि लड़कियों के मार्ग में कठिनाइयाँ अ बाधाएँ बहुत हैं, परन्तु, यह बात स्पष्ट है कि इन कठिनाइयों अ बाधाओं को वे स्वय ही दूर कर सकती हैं। बस, थोड़ा 'खरा और 'बुरी' बनने की आवश्यक्ता है। आज से कुछ वर्ष लड़के भी अपने विवाह के सम्बन्ध में बोल नहीं सकते थे (अ आज भी वे कौनसा बहुत हस्तक्षेप कर सकते हैं!), किन्तु अब स्थिति धीरे धीरे बदल रही है। इसी प्रकार लड़कियों को भी 'निर्लज्ज' 'बेहया' और 'कलजुगी' बनकर अपने सगे-सम्बन्धियों और माँ बाप को मुँहफट बनकर साफ़-साफ़ बातें कहनी पड़ेंगी

और अपनी उचित माँगों के लिये सघर्ष करना पडेगा। विना इस तरह किये कुछ नहीं हो सकेगा। विद्रोह किये विना किसी दवे हुए व्यक्ति या समाज या देश को आज तक कभी कुछ नहीं मिला है।

कई वहनें अपने घरेलू जीवन की विषमताओं से दुखी होकर और सगे-सम्बन्धियों के अनुचित व्यवहार से तग आकर आत्म हत्या कर लेती हैं। इससे अधिक गलत और मूर्खतापूर्ण वात और कोई नहीं हो सकती। हमारी अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये शायद वलि की, कुर्वानी की, आवश्यकता है—जैसे कि ससार में प्रत्येक ऊँचे काम के लिये होती है—परन्तु आत्म हत्या कुर्वानी नहीं है, यह परले दर्जे की कायरता और दुर्वलता है। आवश्यकता इस वात की है कि नारी साहस और दृढ़ता से काम लेकर सामाजिक सुधार के चेत्र मे डटकर खडी हो जाए। चेत्र से अपने को हटाने या वहाँ से भागने से उसकी विजय कैसे होगी ?

भारत की स्त्री-जाति में सुधार की लहर थोडी-थोड़ी चल पड़ी है। कमी अभी तक इस वात की है कि उनके अन्दर सगठन नहीं है। थोड़ा-वहुत सगठन है तो वह उच्च वर्ग की महिलाओं मे है—और वह भी केवल वडे-वडे शहरों में। स्त्रियों मे सगठन की वड़ी भारी आवश्यकता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि संगठित होने तक वे कोई सुधार-कार्य बिल्कुल ही न करें। स्त्रियों और लड़कियों को चाहिये कि वे अपने-अपने घरों में सुधार प्रारम्भ कर दें, और कष्टों, अत्याचारों और वदनामी की परवाह न करें कर धीरे धीरे अपना सगठन बनाए।

तीसरा भाग

घरेलू जीवन

घर एक विद्यालय है जिसमें बच्चे, जवान, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब जीवन की कला सीखते हैं।

घर एक ऐसा केन्द्र है जहाँ जीवन-सघर्ष के लिये व्यक्ति को तैयार किया जाता है।

घर एक ऐसा स्थान है जहा हमारी समझ और हमारे धैर्य की परीक्षा होती रहती है।

घर एक ऐसी प्रयोगशाला (लैबॉरेट्री) है जहा मानव जीवन के प्रयोग (तजुर्बे) किये जाते हैं।

घर एक फुलवाडी है जिसमें भाति भाति के फूल उगते हैं, किन्तु खिलकर मुरझा जाना ही उनका जीवन नहीं है—वे सदा खिले रहने के लिये, सदा सुगन्धि देने, सुगन्धि फैलाने के लिये खिलते हैं।

घर के जीवन का यही आदर्श है, यही होना चाहिये।

बच्चे

बच्चा मा-बाप का खिलौना—मा के हृदय रूपी आकाश का चाद, बाप का मन-बहलावा, मा का जीवन धन, प्राण प्यारा, बाप के जीवन का सहारा, घर की ज्योति और बाहर की बहार, मानव-जाति का पिता और देश का भावी कर्णधार—बचा यह सब कुछ—बल्कि इससे भी कुछ अधिक है। किन्तु अफ़सोस ! हमने बच्चों का ठीक मूल्य नहीं आका, इनका उचित महत्व नहीं समझा। हमने बच्चों को खाण्ड के खिलौने ही समझ लिया है, हम उन्हें देख देखकर प्रसन्न होते हैं, उनकी तोतली बातें सुनकर हम जोर-जोर से हँसते है, उनकी खुशी को अपनी खुशी समझते हैं, उनके दुःख-तकलीफ को अपने दुःख-तकलीफ समझते हैं, परन्तु फिर भी हमे बच्चे सम्भालने की विद्या और उनका ठीक लालन पालन करने की कला नही आई। मा को बच्चा बहुत प्यारा होता है—अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा होता है—बच्चे की मृत्यु मा के लिये एक असह्य वेदना, एक महाभयकर आघात होता है। बच्चा मा के भविष्य की आशा है, यह सब कुछ होते हुये भी हमारी माताओं को बच्चे पालने की समझ नहीं है। माता बच्चे को प्यार अवश्य करती है, किन्तु उसे प्यार करने का ठीक ढग नहीं आता। माता का बच्चे के साथ मोह है, परन्तु ।

आप अपने ही घर को देखिए—हम बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं ? हम चाहते हैं कि बच्चे कभी रोते न दिखाई दें, क्योंकि बाल बच्चे हसते-खेलते ही अच्छे लगते हैं। परन्तु यह सच है कि हम स्वयं ही बालकों को रुलाते हैं। हम उन्हें नहलाते हैं तो बाध-जूड कर और थप्पड़ लगाकर, अन्यथा वे बस में ही नहीं आते, न ही वे नहाने का नाम लेते हैं। उन्हें कपडे पहनाने होते हैं तो भी मार-पीटकर पहनाए जाते हैं। जो दूध पिलाना हो तो वह भी मार-पीटकर पिलाया जाता है—वे दूध भी स्वय नहीं पीते। यदि बच्चे को चुप कराना हो तो भी मार पीट, धमकी और झिड़कियों के बिना उसे चुप नहीं कराया जाता। जब उसे सुलाना हो तो उसे लोरिया दो, थपकिया दो, परन्तु जब तक उसे हौवे और बिल्ली आदि का डर न दिखाओ तब तक वह सोता ही नहीं। यदि वह आपको काम नहीं करने देता और तग करता है तो जब तक आप उसे मार-पीटकर चारपाई पर पटककर उसे सुला न दें तब तक आप कोई काम नहीं कर सकते। यदि वह आपके पीछे-पीछे लगा हुआ है, आपका पीछा नहीं छोड़ रहा, तो जब तक आप उसे 'भागने वाले' का डर न दिखाओ और यदि आप अधिक परेशान हो उठे हैं तो उसे दो चार थप्पड़ न लगाओ तो वह आपका पीछा नहीं छोड़ता। यदि वह किसी अन्य बालक की रीस करके कोई वस्तु माँगे तो झिडककर बिठा दो, नहीं तो बच्चा तग करेगा। यदि बच्चे कहना नहीं मानते तो डडा लेकर दो-चार लगा दो, अपने आप मान जायेंगे। यदि वे

छाबडी वाले को देखकर या कुल्फी या दही-बडे वाले को देखकर चीज मागें और आप उन्हें न देना चाहें और वे बार बार मागें तो बेशक उनके चाटे लगाओ। जो वे चारपाई पर ही मल मूत्र त्याग दें तो उठाते ही उनकी खबर लो। यदि वे काम न करें तो डडा, सोटा, चिमटा जो कुछ हाथ लगे, उससे उनकी हड्डिया तोड डालो। यदि बच्चा न पढ़े तो उसे स्वय भी मारो और उसके अध्यापक से भी उसे पिटवाओ। यदि वह सारा दिन बाहर रहे और बार बार बुलाने पर भी घर न आवे तो उसे बलपूर्वक पकड़ कर घसीटकर घर ले आओ और 'अन्धेरी' कोठरी मे बन्द कर दो। यदि वह घर मे सारा दिन पडा रीं रीं करता है और बाहर गली मुहल्ले मे खेलने नहीं जाता तो बलपूर्वक उसे बाहर निकाल कर मकान का द्वार बन्द कर लो। यदि वह सारा दिन रोटी-पानी ही मागता है तो परवाह न करो, जब तुम्हें अवकाश मिले तब दे दो। यदि वह मिट्टी धूल में खेल कर अपने कपडे गन्दे कर लाए तो मार मार कर मुह लाल कर दो।

यही कुछ करते हैं हम बच्चों के साथ। ये हैं बच्चों को शिक्षित करने और सुधारने के हमारे ढग। यह है हमारी माताओं की बच्चों को सम्भालने और पालने-पोसने की प्रणाली, जिस पर वे गर्व करती हैं। क्या हम इन उपायों और तरीक़ों से बच्चों को उनके भावी जीवन के लिये तैयार कर रहे हैं? क्या इसी तरह हम बच्चों को राष्ट्र और देश के भावी नेता बनने के लिये तैयार कर रहे हैं? क्या हम इसी तरह अपने बेटे बेटियों को बाल-बच्चे

सम्भालने का ढग सिखा रहे हैं ? क्या हम इन्हीं बचों पर इतनी आशाए लगाए बैठे हैं ? क्या ये अपने माता पिता की आज्ञाकारी पुत्र पुत्रिया होंगी ? क्या यही बालक बडे होकर माता-पिता का सेवा करेंगे और कमा कर उन्हें खिलाएगे ?

अफ़सोस ! हमने बालकों के अमूल्य जीवन का उचित मूल्य नहीं समझा और हमें अब तक इनको सुयोग्य बनाने का ढग नहीं आया। हमने उन्हें केवल अपने दिल बहलाने का सामान और घर की रोशनी समझ छोड़ा, कभी हमने यह नहीं सोचा कि ये बच्चे देश के वैभव हैं, राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति हैं। जिन बालकों का घरेलू जीवन माँ-बाप से झिड़कियाँ तथा मार खाकर बीतता है, उन्होंने बडे होकर क्या करना है ? जिन्हें सदा मा-बाप के शासन में रहना है और जो उनकी आज्ञा के बिना कुछ नहीं कर सकते, बडे होकर उनमे आत्म विश्वास का मान कैसे उत्पन्न हो सकता है ? जिन्हें घर में अपनी समझ और बुद्धि प्रयोग मे लाने की आज्ञा नहीं वे बडे होकर क्या काम कर सकते हैं। जो अपने घर में अपना व्यक्तित्व प्रकट न कर सके उनमें यह साहस कैसे पैदा होगा कि वे सत्य और न्याय के लिये मर मिटें। जिनको हमने घर मे आत्म सम्मान नहीं सिखाया वे बाहर अपने आत्म-सन्मान की किस प्रकार रक्षा करेंगे ? जिनका हमने घर में आदर नहीं किया, बाहर उनका किसने आदर करना है ? जिन्होंने घर में स्वाधीनता नहीं देखी वे बाहर स्वाधीनता का क्या आनन्द उठा सकते हैं ? जो घर में हर समय 'खराब' और 'नालायक़' हैं वे

बाहर कब अच्छे और 'लायक' हो सकते हैं ? जिन्होंने छोटी अवस्था मे मा-बाप के अन्याय सहे हैं वे कल को बडे होकर अपने बच्चों के साथ भी यही कुछ करेंगे। जिन लडकियों ने अपनी माताओं से यही कुछ सीखा है वे माताएँ बनकर वही कुछ करेंगी। यह चक्र इसी तरह चलता रहेगा।

यदि हम अपनी, अपने देश एव राष्ट्र की, नहीं नहीं, सारी मनुष्य जाति की उन्नति और मुक्ति चाहते हैं तो हमें अपने घरों का सुधार करना चाहिये, अपने बच्चों का जीवन सुधारना चाहिये और उन्हें हर तरह योग्य बनाना चाहिये। हमारी भलाई इसी में है।

आज मा की गोदी मे खेलने वाला शिशु कल देश का नेता बनेगा, राष्ट्र का गौरव कहलाएगा, मनुष्य-जाति का चमकता सितारा होगा। राष्ट्र को, देश को, मनुष्य जाति को उससे बडी-बडी आशाएँ हैं, और सबसे बढकर उसके माता-पिता की समस्त आशाओं का वह केन्द्र है। ससार को सुखी बनाने वाले अपने परिश्रम का फल स्वय कम ही खाते हैं। आज का बच्चा ही बड़ा होकर ससार की उन्नति से लाभ उठाएगा। हमारी अपेक्षा आगे आने वाली पीढ़िया वैज्ञानिक उन्नति और सुख-सुविधाओं का अधिक उपभोग करेंगी। वर्तमान समय मे सीखी बातों का लाभ हमारे पुत्र-पुत्रियाँ, पौत्र पौत्रियाँ आदि ही उठाएगे। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या हम उन्हें इसके योग्य बना रहे हैं ? क्या आज की बदलती दुनिया के लिये हम उन्हें तैयार कर रहे हैं ? क्या हम

बच्चों के माता पिता से बच्चों की शिक्षा और सम्भाल के सम्बन्ध में कभी बातचीत करो तो वे हँस देते हैं। वे समझते हैं कि इस सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम अपने बच्चे की अमरीका एवं इंग्लैंड के बच्चों के साथ तुलना करके देखें तब हमारी आँखें खुलें। तब हमें पता लगेगा कि हम कितने पानी मे हैं। हमारी शिक्षा और शिशु पालन-कला के जीते जागते उदाहरण आजकल के भारतवासी हैं, इनकी तुलना अन्य देशों के लोगों से करके देखिये। हमारी पालन-पोषण की रीति और शिक्षा आदि मे क्या त्रुटियाँ हैं ? हम उन्हें दूर करने के लिये क्या कर रहे हैं ? क्या हम आने वाली पीढ़ी को अपने से अधिक योग्य, अधिक साहसी, अधिक चरित्रवान और अधिक गुणवान बनाने का उपाय कर रहे हैं, अथवा उन्हें हर बात मे अपने जैसा या अपने से भी गया बीता देखकर संतुष्ट और प्रसन्न हैं ?

वास्तव मे हमारे बच्चों को न तो घर में अपनी इच्छा के अनुसार कुछ काम करने की स्वाधीनता है और न ही स्कूल में। घरों में उन्हें माँ बाप के शासन मे रहना पड़ता है, और स्कूल मे अध्यापकों की आज्ञा के अनुसार चलना पड़ता है। न माँ बाप उनके विचारों और भावनाओं का सन्मान करते हैं, न अध्यापक लोग। बच्चों की दुनियाँ उसके काल्पनिक महल हैं। क्या ऐसी स्थिति मे हम यह आशा कर सकते हैं कि बच्चे बड़े होकर स्वतन्त्रता एवं स्वाधीनता का ठीक मूल्य आँक सकेंगे। जिसे कभी स्वाधीनता मिला ही नहीं उसे स्वाधीनता का क्या पता ? हमारे घरों मे बच्चे छोटी से छोटी

बात भी अपनी इच्छा के अनुसार नहीं कर सकते। यदि बालक स्वय नहाना चाहेगा तो माँ कहेगी, "नहीं, तुझे स्वय नहाना नहीं आता।" यदि वह कप स्वय पहनना चाहेगा तो माँ कहेगी, "छोड़ कपड़े। मैं पहना दूँगी। तुझे पहनने भी आते हैं? तू तो इन्हें फाड डालेगा, मैले कर डालेगा।" यदि वह अपने खिलौने आदि स्वय किसी स्थान पर सम्भाल कर रखना चाहे तो माँ-बाप तुरन्त झिड़क देते हैं और कहते हैं, "तूने कभी कोई चीज सम्भाल कर रखी भी है? छोड़ दे, मैं आप ही सम्भाल कर रख दूँगी। तू तो इन्हें तोड डालेगा।" हम यह विश्वास रखते हैं अपने बच्चों में। माना कि बच्चे खिलौनों को तोड देते हैं, कपडों को फाड देते हैं, तथा अन्य चीजों को खराब कर देते हैं, और ऐसे कामों मे हाथ डालने का प्रयत्न करते हैं जो उन्हें करना नहीं आता। परन्तु हम यह भूलते हैं कि यही उनके सीखने का ढग है। यदि हम उन्हें छोटी-छोटी बातों के करने से मना करेंगे तो वडे होकर बडे बडे कामों में हाथ डालने का उन्हें कैसे साहस होगा? उनका तो छोटी अवस्था में ही ऐसा स्वभाव बन जाएगा कि किसी नए और कठिन काम को करने की उनकी हिम्मत ही नहीं पडेगी। अत हमारा कर्तव्य है कि हम बच्चे के मित्र और सलाहकार बनें, न कि उसके शासक और श ु। हम चाहे कितना ही दावा करें कि हम जो कुछ करते हैं उनके भले के लिये ही करते हैं—यदि उन्हें मारते हैं तो भी उनकी भलाई के लिये— परन्तु यदि हम बच्चे के विचारों और भावनाओं को समझने का प्रयत्न करें और अपने

अन्तर मे झाँक कर देखें तो हमें पता लगेगा कि वास्तविकता क्या है ? हम अपनी ओर से तो बच्चे का भला करते हैं, परन्तु वास्तव में हम उसे कायर, निरुत्साही और निरुद्यमी बना रहे हैं। जब हम बच्चे को मारते हैं तो अपनी ओर से तो हम उसकी बुरी आदत दूर करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वास्तव में हम उसे अपने विरुद्ध कर रहे हैं और बुरी आदतों को पक्का कर रहे हैं। यदि हम बच्चे के छोटे से दिल में अच्छी तरह झाँक कर देखें तो हमे उपरोक्त बात का प्रमाण मिल जाए। मार खाने का प्रभाव एव परिणाम मार खाने वाले के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। एक बच्चा मार खाकर कोई आदत छोड़ देता है, तो दूसरा बच्चा मार खाकर उलटा ढीठ हो जाता है, तीसरे की पहले ही यह कोशिश होती है कि वह अपना मनोवाछित काम चोरी-छुप्पे करे और न वह पकड़ा जाय और न मार खाए, चौथा मार खाकर अन्दर ही अन्दर कुढ़ता और जलता रहता है और मा बाप को अपना शत्रु समझने लगता है। एक ही मार के ये भिन्न भिन्न परिणाम हैं। हर एक बच्चे का अलग अलग व्यक्तित्व होता है और उसके साथ उसी के अनुसार चलना पड़ता है। अन्यथा सदा के लिये हम बच्चे का जीवन दुखी बना देंगे। हम बच्चे को वास्तव में अपना क्रोध शान्त करने के लिये मारते हैं—हमें शांति तभी पड़ती है जब हम उसे मार-पीट लेते हैं। यह बात हमारे लिये और बच्चे के लिये बड़ी हानिकारक है। अपनी क्रोधाग्नि के लिये बच्चे को आहुति समझकर हम उसके दिल पर बड़ी

करारी चोट पहुँचाते हैं, जिसका बच्चे के स्वभाव और व्यक्तित्व पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है।

हमारा हित इसी में है कि हम बच्चों के साथ अपने व्यवहार को बदलें और उनके मनोविज्ञान, उनकी आशाओं आकांक्षाओं, उनकी प्रवृत्तियों तथा उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने का प्रयत्न करें। जैसा हमारा दिल है वैसा ही बच्चे का भी है और उसके दिल पर भी हमारी तरह प्रभाव पड़ता है और प्रतिक्रिया होती है। एक छोटा सा उदाहरण ले लो। एक बच्चे को उसकी बराबर की आयु वाले बच्चों के सामने किसी बात पर लज्जित करके देखो और उस समय उसका चेहरा देखो। वह इस बात का कितना बुरा मानता है और मुँह फुला लेता है और आप से मन में बुरी तरह रुष्ट हो जाता है। उसका हृदय चिकने घड़े की भाँति नहीं होता कि पानी डाला और फिसल गया और घड़े पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसके मन पर प्रत्येक बात का प्रभाव पड़ता है और सदा के लिये लकीर खिंच जाती है। बड़े बेटे बेटियों की माँ बाप र साथ न निभ सकने का मुख्य कारण यही है। उनकी छोटी अवस्था में माँ-बाप का उनके प्रति व्यवहार उनके स्वभाव को एक विशेष प्रकार का बना देता है, जब वे कुछ बड़े हो जाते हैं तो उन बातों का प्रभाव इस रूप में प्रकट होता है। बचपन की ईर्ष्याएँ, इच्छाएँ, आकाँक्षाएँ, क्रोध, रोष, आदि भावनाएँ कभी न कभी अपना प्रभाव अवश्य प्रकट करती हैं—चाहे किसी भी आयु में करें।

सफाई

हमारे सामाजिक जीवन के बहुत से क्षेत्रों में हमारे बहुत से सिद्धान्त देखने को तो बड़े ऊँचे हैं, परन्तु उनका पालन करने में हम बहुत गिर चुके हैं। धर्म के बड़े-बड़े सिद्धान्तों की बात तो छोड़िये, छोटी-छोटी दिनचर्या की बातों में भी हमारे वचन और कर्म में दिन-रात का अन्तर है। परन्तु यह कितनी हास्यप्रद बात है कि गिरावट और दुर्बलताए होते हुए भी हम अपने दैनिक कामों की उन्हीं ऊंचे सिद्धान्तों की आड लेकर प्रशसा किये चले जा रहे हैं—यद्यपि वे सिद्धान्त हमारे यहां केवल नाम-मात्र को ही रह गए हैं। उदाहरण के लिये हमारे सफाई के नियम ले लीजिये —

हम लोग सफाई स्वच्छता को बहुत पसन्द करते हैं। मुंह साफ किये बिना और स्नान किये बिना हम मुंह में कुछ भी नहीं डालते, हाथ धोये बिना किसी खाने की वस्तु को नहीं छूते, किसी के जूठे बरतनों में हम नहीं खाते पीते, बरतन को मांजे बिना हम उसे शुद्ध नहीं मानते। इसी प्रकार के कई परहेज हैं जो हम स्वच्छता और शौच के लिये करते हैं। सफाई रखना बड़ी अच्छी बात है, मूर्ख लोग ही गन्दे रहते हैं। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक हम विचार करें तो हमें पता लगेगा कि हम वास्तव में कितने सफाई पसन्द हैं। स्नान करने को हमने एक धार्मिक नियम समझा हुआ

है, और शारीरिक पवित्रता के साथ-साथ हम इससे आत्मिक पवित्रता प्राप्त करना भी मान लेते हैं। परन्तु हममें से बहुत-से लोग इस प्रकार नहाते हैं कि उससे शारीरिक स्वच्छता तो हो नहीं सकती, आत्मिक स्वच्छता भले ही हो जाए। एक गन्दा सा कपड़ा कमर के चारों ओर लपेट कर और थोडा सा पानी लेकर हम लोग कुछ लोटे पानी शरीर पर जल्दी-जल्दी डाल लेते हैं और हाथों से ही शरीर को निचोड कर, या किसी मैले-कुचैले तौलिये या अंगोछे से पोंछकर कपडे पहन लेते हैं।

अन्दर पहनने वाले कपडे आमतौर पर मैले होते हैं, बाहर वाले थोडे सफेद और उजले। बाहर पहनने के कपडे चाहे हम जल्दी-जल्दी बदल लेते हों, किन्तु अन्दर वाले कपडे हम लोग १५ १५ दिन में भी नहीं बदलते। हम कहते हैं कि अन्दर वाले कपडे कौन देखता है? बाहर वाले कपडे यदि मैले हों तो उन्हें सब कोई देखते हैं, इसलिये बाहर वाले कपडों का जल्दी-जल्दी बदलना आवश्यक है।

बिना हाथ धोये हम कुछ नहीं खाते पीते, परन्तु अनेक बार केवल एक चुल्लू पानी से हाथ धोकर हम समझ लेते हैं कि हाथ धुल गए। और फिर हम इन 'धुले हुए' हाथों को अपनी पगडी की लड, या धोती या कुर्ते-कमीज के छोर से पोंछ लेते हैं। कई बार हाथ पोंछने के लिये हम उस रूमाल को काम मे ले आते हैं जो नाक साफ करने के लिये हम अपनी जेब में रखते हैं। कई बार किसी अत्यन्त मैले-कुचैले अंगोछे से हाथ पोंछ डालते हैं। सोचिये

ऐसे स्नान और ऐसे हाथ धोने से क्या लाभ ? यदि सफाई इ का नाम है तो गन्दगी किसे कहेंगे ? नहाने या हाथ धोने के बाद यदि हम शरीर और हाथों को गन्दे कपड़े से पोंछ लेते हैं तो वास्तव में सफ़ाई की बजाय हम और भी गन्दगी सहेड़ लेते हैं।

बरतनों को माजने का भी हम बड़ा ध्यान रखते हैं। राख से उन्हें रगड़-रगड़ कर चमका देते हैं और उसके बाद झाड़-पोंछकर उन्हें रख देते हैं। परन्तु कई बार देखा जाता है कि राख चाहे कितनी भी गन्दी क्यों न हो जाए हम उसी से और बरतन मानते रहते हैं। क्या राख ऐसी पवित्र चीज है जो कभी गन्दी हो ही नहीं सकती ? बरतन माजने के लिये कई बार कपड़े का टुकड़ा अथवा चीथड़ा काम में लाया जाता है, अथवा कई बार बान (पतली रस्सी) का एक लम्बा सा टुकड़ा लेकर उसे लपेट कर गुच्छा सा बना लेते हैं और उससे बरतन माजते हैं। परन्तु वह कपड़ा या चीथड़ा या बान का गुच्छा महीनों-महीनों काम में लाते रहते हैं। बरतन माजकर एक बड़ी सी बालटी या भिगोने में पानी भरकर उसमें धोये जाते हैं। थोड़े से बरतन धुलने के बाद यह पानी बहुत गन्दा हो जाता है। परन्तु इसे बदला नहीं जाता, वरन् घर के सारे बीस तीस बरतन इसी में धो दिये जाते हैं। भोजन परसने के समय बरतन पोंछे जाते हैं तो भी एक काले रूमाल, गन्दे कपड़े अथवा अगोछे से, जिससे साथ-साथ रोटियां भी पोंछी जाती हैं। हम बरतन रगड़ने और चमकाने पर बड़ा जोर देते हैं, परन्तु

जिस चीज़ के साथ बरतन माजे जाते हैं, उसकी ओर हम ध्यान ही नहीं देते।

माताएं बच्चों को जिस तरह साफ करती हैं उसे ले लीजिये। वे बच्चे को नहला कर उसके मैले झगले, या फ्रॉक या कमीज़ से ही उसका शरीर पोंछ डालती हैं। इसी झगले या कमीज़ से मा ने कितनी बार उस बच्चे का नाक पोंछा होगा। स्त्रियों की धोती, दुपट्टे या ओढनी का छोर भी कई काम आता है। जब ओढ़नी या दुपट्टा ओढ़ने वाली महिला कहीं जाती है तो ओढनी या दुपट्टा पीछे-पीछे झाड़ू लगाता चलता है। बच्चे का नाक बह रहा हो तो उसे भी दुपट्टे के छोर से पोंछा जाता है। जब बच्चे का मुंह या हाथ धोया तो उसे भी दुपट्टे के छोर से पोंछ दिया। जब चौके में बैठी तो थाली-कटोरी भी दुपट्टे के छोर से पोंछ दी। जिनकी माताए यह कुछ करती हैं उनकी सन्तान भी तो यही कुछ सीखती है।

घरों की स्वच्छता भी हमारी अजीब तरह की है। बुहारी झाड़ू देना हमारा नित्य का नियम है, परन्तु झाड़ू देकर कूड़ा-करकट हम या तो अपने ही मकान के बाहर मुख्य-द्वार के पास डाल देते हैं, या यदि हम ऊपर की मंजिल में रहते हों तो ऊपर की खिडकी में से ही बाहर फेंक देते हैं। घर की सफाई तो हमने करदी, किन्तु घर के बाहर हमारे द्वार पर ही कूडे का ढेर लग जाता है जहा मक्खिया भिनभिन करती फिरती हैं। यही मक्खिया फिर हमारे घर में आ घुसती हैं और बीमारिया फैलाती हैं।

कितनी कमाल की सफाई है हमारी। हम तो वास्तव में मक्खी-मच्छरों के योग्य खूराक इकट्ठी करके उसे अपने मकान के द्वार के पास या गली में रख छोड़ते हैं। सो यह तो मक्खी-मच्छरों के पालने का काम हुआ। अर्थात् बीमारी को निमन्त्रण देने की बात हुई, न कि स्वच्छता के द्वारा बीमारियों को दूर भगाने की।

जिन दो जगहों की सफाई सब से अधिक आवश्यक है वे हैं स्नानालय और शौचालय। परन्तु इनकी सफाई की ओर हम बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते। अब समय बहुत बदल गया है। वह युग अब नहीं रहा कि लोग जगल या खेतों की ओर शौच निवृत्ति के लिए जाए और कूओं पर नहा लें। गाव मे नि सदेह अभी भी यही सिलसिला चलता है, परन्तु नगरों मे—चाहे वे बड़े हों, चाहे छोटे—यह नक़शा बदल चुका है। अब तो प्रत्येक घर मे स्नानालय और शौचालय की आवश्यकता होती है और इन दो जगहों के बिना किसी का भी निर्वाह नहीं हो सकता—चाहे कोई धनवान हो चाहे निर्धन। परन्तु जब हम मकान बनवाते हैं तो यह कोशिश करते हैं कि स्नानालय और शौचालय छोटे-से छोटे और किसी कोने में या अन्धेरी जगह में बना दिये जावें। बड़े-बड़े नगरों मे बड़े-बड़े भव्य भवनों मे जीने के नीचे जो खाली जगह बच जाती है, आम तौर पर उसमें स्नानालय और शौचालय बना देते हैं। न इनमे रोशनी आती है, न हवा। स्नानालय हम इतने छोटे बनाते हैं कि एक आदमी उनमे खुलकर हाथ पाव भी नहीं हिला सकता। शौचालय तो और भी छोटे

होते हैं। इस प्रकार के स्नानालय और शौचालय कभी अच्छी तरह साफ़ नहीं किये जा सकते। ये दोनों जगह ऐसी खुली होनी चाहियें कि इनमे हवा और धूप खूब खुलकर आ सके। जब तक हम इन दोनों जगहों की ओर उचित ध्यान नहीं देंगे, हमारी शारीरिक सफाई तथा आरोग्यता कभा नहीं रह सकती।

उपरोक्त कुछेक उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमें वास्तविक सफ़ाई की विधि सीखने की कितनी भारी आवश्यकता है। हम चाहे कितना ही दावा करें कि हम बडे सफाई-पसद हैं, (शौच को मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षणों मे से एक माना है), पर वास्तव मे हम शौच स्वच्छता एव सफ़ाई रखना नहीं जानते। दो चार उदाहरण जो ऊपर दिये गये हैं उसके नमूने हम लगभग प्रत्येक घर मे देख सकते हैं। ये उदाहरण आजकल के हैं, बीते युग के नहीं। हम मे से बहुतेरे लोग इन बातों को अनुभव भी करते हैं, पर हमने अपने को या अपने सम्बन्धियों और भाई-बन्दों को बदलने का साहस कभी नहीं किया। शायद हम यह समझ बैठे हैं कि दिखावे की सफाई ही आवश्यक है, परन्तु यह हमारी बड़ी भारी भूल है। यह ठीक है कि उपरोक्त आदतें प्राय माताए ही अपनी सन्तान को सिखाती हैं और यह क्रम इसी तरह चलता रहता है, परन्तु प्रश्न यह है कि हमने माताओं की इन आदतों को बदलने का क्या उपाय किया है?

बड़ों का आदर

बड़ों का आदर करने की हमारी प्रथाएं भी बड़ी निराली हैं। उन्हें देखकर हँसी आए बिना नहीं रह सकती। सबसे अधिक हास्यप्रद पत्नी की ओर से पति के आदर की प्रणाली है। पत्नी अपने पति का नाम नहीं बोल सकती। माना कि अपने से बड़ों का नाम लेना अच्छा नहीं होता, परन्तु यदि आवश्यकता और अवसर आ पडे तो क्या किया जाए। स्त्री अपने पति का साधारण तौर पर नाम न ले तो चलो कोई बात नहीं, परन्तु हमने तो इस प्रथा को एक व्यर्थ का वहम, ढकोसला और जजाल बना छोड़ा है। यह प्रथा यहा तक हास्यजनक बन चुकी है कि यदि पति के नाम के साथ मिलता-जुलता किसी नगर, आभूषण, खाद्य-पदार्थ अथवा ससार की किसी भी वस्तु का नाम होगा तो स्त्रिया उस शब्द का भी अपने मुख से उच्चारण नहीं करेंगी। यदि कोई पुरुष 'मथुरा प्रसाद' होगा और उसकी धर्मपत्नी को किसी कार्यवश मथुरा शहर का नाम बोलना पडे तो वह कभी मुँह से 'मथुरा' नहीं कहेगी। उसे मथुरा का टिकट लेना पडे तो बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यदि किसी पुरुष का नाम 'मूलराज' हो तो उसकी स्त्री बेचारी 'मूली' शब्द भी नहीं बोल सकती। उसे मूली खरीदनी होगी तो वह साग भाजी वाले को

केवल इशारे से बताएगी, या 'पत्तों वाली' आदि कुछ और नाम से उसका संकेत करेगी। यदि पति का नाम 'मक्खन लाल' होगा तो पत्नी मक्खन शब्द बोलना ही छोड़ देती है। मक्खन के लिये वह 'कच्चा घी' शब्द का प्रयोग करने लगेगी। यही नहीं बल्कि यदि किसी धार्मिक भजन, शब्द आदि में उसके पति का नाम— जैसे शिव, कृष्ण, विष्णु इत्यादि आ जाए तो या तो स्त्री उस पद को पढ़ेगी ही नहीं, या मन-मन मे पढ़ लेगी या उस पद की तुक ही बदल देगी। एक कहानी इस सम्बन्ध में विख्यात है। एक महिला के पति का नाम 'गुरमुख सिंह' था। वह स्त्री सिक्ख धर्म को मानने वाली थी, इसलिये नित्य प्रति सवेरे 'जपजी' का पाठ करती थी। जब वह 'जपजी' में 'गुरमुख नाद, गुरमुख वेद, गुरमुख रहा समाई' वाली पंक्ति पर आती थी तो इस पद मे 'गुरमुख' शब्द की जगह 'मुन्ने के पापा' शब्द बोल लेती थी।

बात यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती। ससुर, जेठ, ननदोई, पति के चाचा-ताऊ आदि सब उसी सूची मे आते हैं जिनका नाम स्त्रियां अपने मुख से नहीं बोल सकतीं और इस तरह उनका आदर करती हैं, इन सबका नाम लेना मना है।

इस नियम का पालन बड़ी कट्टरता के साथ किया जाता है। यहां तक कि यदि कोई आपत्ति आ जाए या स्त्री किसी संकट में भी घिर जाए तो भी वह पति आदि का नाम नहीं ले सकती। कई बार स्टेशनों पर ऐसी घटना घट चुकी हैं कि पति पत्नी यदि किसी कारण बिछुड़ जाए तो पत्नी रेलवे कर्मचारियों को

या पुलिस को भी अपने पति का नाम नहीं बताती। बहुत करेगी तो यह सकेतों से काम लेकर उन्हें बताने का प्रयत्न करेगी। वे अनुमान लगा सकें तो ठीक, नहीं तो भगवान् की इच्छा। एक स्टेशन पर एक पति और पत्नी गाड़ी में चढ़े। पति उतर कर पानी लेने गया, इतने में गाडी चल दी। पत्नी को जिस स्टेशन पर उतरना था, वह उस पर जा उतरी। वहा टिकट-कलक्टर ने टिकट मागा। उसने कहा 'वे' पीछे अमुक स्टेशन पर रह गए हैं। बाबू ने कहा नाम बता दो, हम तार दे देते हैं। परन्तु यह नाम कैसे बताए? उसने पहेली बुझानी शुरू की। कहने लगी, "उनका नाम उस पर है जिससे रोशनी होती है।" बाबू ने पूछा, "चन्द्र प्रकाश?" स्त्री ने कहा, "नहीं।" फिर बाबू ने पूछा, "तारा चन्द?" स्त्री ने कहा, "नहीं, जो सवेरे निकलता है।" बाबू ने कहा, "सूरज प्रकाश?" तब स्त्री ने हा भरी।

यह रोग केवल स्त्रियों मे ही नहीं है। हमारे यहा के पति भी तो विलक्षण हैं। उन्हें यदि अपनी पत्नी को बुलाना हो तो वे उसका नाम लेकर नहीं पुकारेंगे। किसी और आदमी के सामने उसकी बात कहनी होगी तो कहेंगे—'वह' कह रही थी। यदि दूसरे की समझ मे न आवे तो अपने पुत्र या पुत्री का नाम लेकर कहेंगे—ओम प्रकाश की मा कह रही थी। और कुछ नहीं तो मुन्ने की या मुन्नी की मा ही कह देते हैं। या बात करने वाला कोई घनिष्ट मित्र या बराबर का व्यक्ति हो तो कहेंगे "तुम्हारी भाभी"। 'घर वाली' कह कर भी उसका वर्णन किया जाता है।

अर्थात् वह पति की सीधी-सादी 'पत्नी' या जो कुछ भी उसका नाम है न होकर और सब कुछ है – अमुक की मा, अमुक की भाभी, अमुक की चाची, अमुक की ताई, अमुक की दादी । 'पत्नी' कहने में या पत्नी का नाम लेने में हमारे पुरुषों को लाज लगती है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों ने पत्नी के सम्बन्ध में कहीं कुछ बात कहनी हो तो अंग्रेजी शब्द 'वाइफ़' कहने की प्रथा चला दी है। परन्तु कोई भी व्यक्ति सीधा शब्द 'पत्नी' या 'धर्मपत्नी' नहीं कहेगा, न ही उसका निजी नाम लेगा।

इस बात के परिणामों में से एक यह भी होता है कि कई बार छोटे बच्चों को अपने मा-बाप के नामों तक का पता नहीं होता। यदि कोई बच्चा कहीं खो जाए और उससे पूछो कि तुम्हारे पिता जी का क्या नाम है तो वह 'पापा जी' 'पिता जी' आदि कह देगा। मा का नाम बताना तो उसके लिये और भी कठिन होगा।

बड़ों के आदर की परिपाटी अभी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। आवश्यकता पड़ने पर भी स्त्रियां अपने जेठ, ससुर, तथा पति के चाचा, ताऊ आदि से नहीं बोलतीं। उनसे घूंघट निकालना भी अनिवार्य है। यदि कभी इन में से किसी को खाना खिलाना पड़ जाए तो खाने वाले को भी परेशानी हो जाती है और खिलाने वाली को भी। यदि खाने वाला कोई चीज मांगे और वह समाप्त हो चुकी हो तो स्त्री बेचारी किस तरह इन्कार करे? कई बार ऐसे अवसर पर स्त्री खाली पतीली सामने रखकर दिखा देती है, अथवा चुप रह जाती है। पुरुष भी 'बहू' से अधिक बोलना उचित नहीं

समझते। इसलिये जैसा कुछ वह खिलाती है वैसा ही वे बेचा खा-पीकर चले जाते हैं।

'बहू' बीमार हो जाए और घर पर पति या लड़के-वाले हों और ससुर, जेठ आदि हों तो एक भारी समस्या खड़ी हो जा है। न 'बहू' कह सकती कि उसे क्या तकलीफ है, न ससुर जे आदि पूछ सकते। बहुत सी स्त्रियां तो डाक्टर से भी अप हाल नहीं कहतीं।

यह भी रिवाज है कि बहुएं और देवरानियां अभिवादन कर के लिये अपनी सास और जेठानियों के पांव छूती हैं। पांव छू बिना अभिवादन पूरा नहीं होता।

क्या बड़ों का आदर-सत्कार करने के यही तरीके हैं? क्या नाम न लेने, गूंगी बने रहने, और पांव छूने में ही आदर भरा हुआ है? हमारी स्त्रियों में सास, जेठानियों आदि के प्रति जितनी वास्तविक आदर भावना होती है उसे सब जानते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि बड़ों का आदर सच्चे दिल से किया जावे— दिखावे मात्र के लिये नहीं। आदर भाव दिखाने की हमारी प्रणालियां और प्रथाएं हास्य का कारण हैं। हमारी सामाजिक और पारिवारिक प्रथाएं सब सारहीन और दिखावा-मात्र रह गई हैं। पतिव्रत धर्म इन व्यर्थ के आडम्बरों में नहीं है, वह तो आत्मा की चीज है।

बड़ों का आदर एक और प्रकार का भी है जिसकी नींव लोभ के ऊपर स्थित है। कई लोग बड़े बूढ़ों की सेवा इसलिये करते हैं कि जब मामाजी या दादीजी स्वर्ग सिधारेंगे तो अपना रुपया-पैसा

आदि सेवा करने वाले को दे जाएगे, यदि बूढे बूढी के पास माल-दौलत न हो तो हर कोई उन्हें उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। एक कहानी विख्यात है कि एक बूढे को उसके घर वाले पूछते तक न थे, उसे कोई रोटी टुकडा भी न देता था। उसको किसी ने परामर्श दिया कि एक सन्दूक पत्थरों आदि से भर कर भारी-सा बना लो, उस पर एक बडा मोटा ताला लगाकर ताली अपने पास रख लो और अपने बेटों मे से किसी एक की पत्नी को जाकर कहो कि इस सन्दूक को अपने घर मे रख ले। उसने इसी तरह किया। बहू ने सन्दूक रख लिया, बूढे ससुर को बडे आदर के साथ भोजन खिलाया और उससे पति के द्वारा बड़ा नम्र निवेदन कराया कि वे भविष्य में उसी के घर में रहें। बाबाजी तुरन्त सहमत होगए। उनका शेष जीवन बडे आनन्द और आराम से व्यतीत हुआ। जब उनका देहान्त हो गया तो अन्तिम संस्कार हो चुकने के बाद पति-पत्नी ने वडे चाव से सन्दूक खोला। देखकर अवाक् रह गए। चुप रहने के अतिरिक्त अब और चारा ही क्या था।

हमारे यहा के बडे-बूढों के साथ हम यह बर्ताव करते हैं, यह हम उनका सेवा-सत्कार करते हैं। यदि उनके पास धन होता है तो सब बेटे, बहुए तथा सगे सम्बन्धी उनका सम्मान करते हैं, नहीं तो उन्हें कोई दो कौड़ी को भी नहीं पूछता। यह है माता पिता की सेवा का हमारा आदर्श और उसका स्तर। क्या यह महाशोक और लज्जा की बात नहीं है कि हम लोगों मे बडों की सेवा और आदर सम्मान की नींव लोभ के ऊपर टिकी हुई है ?

समय की पाबन्दी

समय की पाबन्दी तो हम लोग बिल्कुल ही नहीं करते। कोई सभा, कोई मीटिंग, कोई जल्सा निश्चित समय पर नहीं होता। घंटे-आध घंटे की देर हो जाना हम बहुत साधारण बात समझते हैं। एक तो प्रबंधक लोग सारा प्रबंध करने में देर कर देते हैं, दूसरे लोगों को भी यह आदत पड़ गई है कि नियत समय से घंटा-आध-घंटा देर से जाएंगे। वे लोग कहते हैं, "देसी (या हिन्दुस्तानी) समय ही है ना!" प्रबन्धक बेचारे भी इसी विचार से अगाऊ समय बतला देते हैं कि लोग ठीक समय तक तो पहुँच ही जाएंगे। हमारे बड़े-बड़े नेता, गुणी, कलाकार, विद्वान् आदि भी इस रोग में फँसे हुए हैं। वे भी समय की पाबन्दी को कोई महत्त्व नहीं देते। व्याख्यान देने वाला एक घंटे की बजाय दो घंटे तक बोलता ही चला जाएगा। विवाहों में बरात को दोपहर का खाना दो बजे खिलाया जाएगा और रात का ११ बजे—चाहे बरातियों के पेट में चूहे दौड़ते रहें। कहा यह जायगा कि ब्याह शादियों में तो इसी तरह हुआ करता है। परन्तु, वास्तव में यह हमारी नासमझी, बल्कि मूर्खता है। हमने समय की पाबन्दी करनी नहीं सीखी तो समझ लीजिये कि हमने सभ्यता की ओर अभी पहला भी क़दम नहीं बढ़ाया है। महात्मा गांधी एक एक मिनट तक अपने समय के

पक्के रहते थे। हमें भी इस आदर्श को अपनाना चाहिये।

घर में हम अपनी दिनचर्या में बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी किसी भी बात में समय की पाबंदी नहीं निभाते। हमारे खाने पीने का कोई निश्चित समय नहीं है, सोने-जागने का कोई समय नहीं, लोगों से मिलने जुलने का भी कोई समय नहीं। सोने का हमारा कोई नियम नहीं—यदि दिन में सोएगे तो तीन-तीन, चार चार घंटे सोते ही रहेंगे। रात के समय किसी दिन १० बजे सो जाएगे तो किसी दिन १ बज जाएगा। हमारी मित्रों आदि से मिलन की प्रणाली भी विचित्र है। कोई कृपालु सज्जन दोपहर जलती धूप में दो बजे मिलने आ जाएगे, तो कोई सवेरे मुँह अंधेरे, और कोई रात को सोने के समय। और फिर उनसे छुटकारा भी कौन जल्दी हो जाता है? वे भी तो बेचारे घर से तंग आकर घड़ी दो घड़ी सांस लेने के लिये आपके पास आते हैं। यदि गर्मी में दोपहर को आएगे तो आपको जगाने से नहीं चूकेंगे। यदि आपके भोजन करने के समय आ जाएगे तो भोजन करने का स्वाद भी गया।

साराश यह कि सज्जन मित्र एक-दूसरे का घंटों का समय नष्ट कर देते हैं। यदि हमे आवश्यक काम भी होगा तो भी हम किसी आए हुए सज्जन से यह नहीं कह सकते कि इस समय क्षमा करें, मुझे एक आवश्यक कार्य करना है। ऐसा कहना बड़ी धृष्टता और अशिष्टता की बात समझी जाती है। यदि हम ऐसा कह दें तो आने वाला नाराज हो जाए। ऐसे अवसर पर हम केवल दिल में

खीझ और कुढ़कर रह जाते हैं और सोचते हैं कि कैसे असमय यह भला मानस आ गया है। शिष्टाचार के नाते, जब तक वह बैठे, तब तक हमें भी बैठना पड़ता है। कितना हानिकारक है हमारा यह 'शिष्टाचार।' और कैसी-कैसी व्यर्थ की बातों पर हम एक-दूसरे से नाराज हो जाते हैं। और हमारे लोकाचार कितने गलत हैं। उचित तो यह है कि जिसने किसी से मिलने जाना हो, उसे उसके साथ समय नियत कर लेना चाहिये। इस तरह न हमें निराश होना पडेगा, न किसी के यहां जाकर घंटों प्रतीक्षा करनी पडेगी, न उस व्यक्ति का हर्ज करेंगे, न उसके कार्यक्रम में गड़बड पडेगी, और न हम अपने को 'अप्रिय अतिथि' बनाएंगे।

इस सारी बात का साराश यह है कि हम अभी तक समय का मूल्य नहीं समझे हैं। जब हम अपने घर में समय की पाबन्दी के नियम का पालन करेंगे, तभी हम यह आशा कर सकेंगे कि हमारे जल्से, सभाए, समारोह, सम्मेलन आदि नियत समय पर प्रारम्भ हुआ करेंगे। एक बार आप यह 'बदनामी' उठालें कि आप समय के बडे पाबन्द हैं, फिर जहां आपको जाना होगा वहा नियत समय पर आपकी प्रतीक्षा होगी, और जिसे आपके घर आना होगा, वह भी नियत समय पर पहुँचने की अवश्य पूरी कोशिश करेगा। आप लोगों को समय की पाबन्दी की शिक्षा दें, उनके साथ आने-जाने का समय तय करें, स्वय ठीक समय पर पहुँचें, यदि कोई दूसरा व्यक्ति समय पर न आए तो उसकी प्रतीक्षा न करें, बल्कि अपने अगले कार्य-क्रम में लग जाए, तो लोग आपको भला बुरा कहकर

अपने आप सीधे हो जाएंगे। जिन सभा-सोसाइटियों में आपका कुछ हाथ है, उनकी बैठकों, सम्मेलनों को नियत समय पर प्रारम्भ कर दें, श्रोताओं की प्रतीक्षा न करें। ऐसा करने से एक-दो बार तो अवश्य आपको कष्ट होगा, किन्तु फिर लोग आपके जल्सों एव मीटिंगों में आप ही समय पर पहुँच जाया करेंगे। यदि जल्से या मीटिंग के प्रधान समय पर न पहुँचें तो उनकी प्रतीक्षा न कीजिये, वरन् कार्यवाही भारम्भ कर दीजिये। इस तरह ही हम जनता को समय की पाबन्दी करना और समय का महत्त्व आँकना सिखा सकते हैं। विश्वास रखिये कि यदि एक दृजन व्यक्ति भी हिम्मत करके ऐसा करने लग जाए तो समय की पाबन्दी की लहर कुछ ही दिनों में चारों ओर फैल जाए। यदि आवश्यकता है तो केवल साहस और उद्यम की। किसी वडे छोटे की परवाह न करो। नियम और सिद्धान्त सब से बडे, सब से ऊपर होते हैं। समय से अधिक मूल्यवान कोई चीज नहीं है। उसके उचित उपयोग के लिये सब से आवश्यक बात यह है कि हम उसे बाट कर जिस जिस समय जो-जो काम करने का निश्चय करें उसकी स्वय भी पाबन्दी करें और जहा तक हमारे कार्य-क्रम से दूसरों का सम्बन्ध है, उनसे भी कराए। हम समय का महत्त्व नहीं समझते, इसका अर्थ यह है कि हम मानव-जीवन का ही महत्त्व नहीं समझते। समय की पाबन्दी मनुष्य का सभ्यता की ओर पहला क़दम है। जब तक हम समय की पाबन्दी करना न सीखें हम सभ्य कहलाने के अधिकारी नहीं।

खाने-पीने का ढंग

हमारे खाने-पीने के भी समय बंधे हुए नहीं हैं। हमारे घरों में दिन चढ़े खाना बनना प्रारम्भ होता है और रात तक रसोई का कार्यक्रम चलता रहता है। स्त्रियाँ बिस्तरे से उठते ही खाना बनाने का कार्य प्रारम्भ करती हैं, और रात तक चौके-चूल्हे का काम नहीं निपटता। घर का कोई व्यक्ति किसी समय खाना खाता है, कोई किसी समय। बच्चों का मुँह तो हर समय चलता रहता है। सारा दिन चौके का काम कर-करके और घर वालों को समय असमय खाना खिलाते खिलाते गृह स्वामिनी की कमर टूट जाती है। घर वालों के अतिरिक्त आने-जाने वाले लोग भी सास नहीं लेने देते। हमारे रिवाज कुछ ऐसे अजीब हैं कि अतिथि चाहे किसी भी समय आ जाए उसके लिये उसी समय भोजन तैयार करना पड़ता है। फिर अतिथि का आदर-सत्कार तभी माना जाता है जब उसकी विशेष खातिरदारी की जाय। वास्तव में अतिथियों के भोजन का समय भी तभी नियत और नियमित हो सकता है जब हमारे घरों का कार्यक्रम नियत और नियमित हो। यदि हम अपने घरों में सदा नियत समय पर भोजन करें तो हमारे अतिथि भी समय का पालन करने लगें।

खाने-पीने के अनिश्चित और अनियमित समय की प्रथा प्राचीन

काल से नहीं चली आ रही है। कुछ ही समय से हमारा खाने-पीने का क्रम बिगड़ा है। पश्चिमी जीवन प्रणाली और काम धन्धों, व्यापार, नौकरी तथा शिक्षा प्रणाली आदि के चालू होने के बाद से हमारे घरेलू जीवन का क्रम बिल्कुल अनिश्चित हो गया है। आप किसी भी साधारण घराने को ले लें। उसमें घर के पुरुष या तो नौकरी करते होंगे या व्यापार आदि, या शायद ऐसा भी हो कि यदि कई पुरुष हैं तो कुछ नौकरी करते हैं और कुछ व्यापार। प्रत्येक औसत घराने में बच्चे-बच्चियाँ पढ़ने के लिये एक या एक से अधिक स्कूलों मे जाते हैं। अब इस घर के लोगों का खाने-पीने का कार्य-क्रम देखें। जो पुरुष व्यापार मे लगे हुए हैं वे सवेरे-सवेरे दुकान पर चले जाते हैं। वे सवेरे थोड़ा-बहुत खा भी लेते हैं, और दोपहर का खाना या तो दुकान पर मगवा लेते हैं, या घर पर आकर खाते हैं। यदि वे घर पर आकर खाते हैं तो इस काम के लिये उनका कोई निश्चित समय नहीं, उनका समय दुकानदारी की दशा, 'सीज़न', तथा ग्राहकों के ऊपर निर्भर करता है। जब उन्हें फ़ुर्सत होगी तब वे घर खाना खाने आएगे। किसी दिन वे ११ बजे आएगे तो किसी दिन १२, और किसी दिन १ या २ भी बज जाएगे। यही हालत शाम को होती है। किसी दिन शाम का भोजन वे ७ बजे करेंगे तो किसी दिन ६ बजे तक भी उन्हें फ़ुर्सत नहीं होगी। घर मे स्त्री 'गरम' खाना खिलाने की उत्कण्ठा में चूल्हा-चौका लिये प्रतीक्षा करती रहेंगी।

नौकरी वालों का यह हाल है कि १० बजे दफ़्तर जाना होगा

तो ६ बजे जल्दी-जल्दी खाना खाकर दफ्तर भागना पड़ता है। शाम को पता ही नहीं कि दफ़्तर से कब छुटकारा मिले। पाँच बजे, छ वजे, सात बजे, जब दफ्तर से छुटकारा होगा तब वे घर आ सकेंगे।

अब घर के बच्चों को लीजिये। गर्मियों में स्कूल जाने वाले बच्चों को सवेरे-सवेरे स्कूल जाना पड़ता है। इतने सवेरे खाना खाने का प्रश्न ही नहीं उठता। वे थोड़ा-बहुत प्रातराश करके स्कूल चले जाते हैं। फिर दोपहर को १-२ बजे घर आकर खाना खाते हैं। शाम को खेल-कूदकर आएगे तब खाना खाएगे। परन्तु शाम का भी कोई बिल्कुल निश्चित समय नहीं है। सर्दियों मे उन्हें १० बजे लगभग स्कूल जाना होता है, इसलिये वे ६ बजे के लगभग खाना खाकर स्कूल के लिये चल पडते हैं। शाम को वे ५ बजे के लगभग आते हैं। सवेरे ६ बजे खाना खाया था, इसलिये शाम को जल्दी भूख लग जाती है। इसलिये उनके लिये खाना जल्दी तैयार करना होता है। कई बार यह भी होता है कि एक घर के कई बच्चे विभिन्न संस्थाओं में पढ़ते हैं और उन संस्थाओं मे पढ़ाई के समय विभिन्न होते हैं। इसलिये प्रत्येक बच्चे की सुविधा के अनुसार भोजन तैयार करने का प्रबन्ध करना पड़ता है।

अब देखिये कि जिस घर में स्कूल जाने वाले बच्चे हैं और घर के पुरुष व्यापार और नौकरी, या केवल व्यापार या नौकरी करते हैं ि सब का भोजन का समय एक दूसरे के साथ ताल-मेल नहीं खाता। सवेरे भोजन का समय दिन चढ़े प्रारम्भ होकर दोपहर

१२ बजे तक चलता है, और शाम को ५ बजे चूल्हे चौके का कार्य प्रारम्भ होकर रात के ६ बजे तक चलता रहता है। सवेरे की चाय दूध या लस्सी-पानी का काम और शाम की चाय आदि का काम अलग रहा।

हमे विचार करना चाहिये कि हमारे इस कार्य-क्रम और भोजन के अनिश्चित समय का क्या परिणाम होता है। हमारे घरों में स्त्रिया बेचारी सवेरे से रात तक चौके-चूल्हे के काम मे घिरी रहती हैं, वे रसोई में एक तरह से कैदी की भाति बन्द रहती हैं, उन्हें आराम करने का बिल्कुल कोई समय नहीं मिलता। यह बेआरामी और व्याकुलता का जीवन उन्हें समय से पूर्व ही बूढ़ी और शक्तिहीन बना देता है। हम कहा करते हैं कि स्त्रियों को चूल्हे-चौके के काम से घृणा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि काम-काज करने से उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है। परन्तु चौके-चूल्हे का काम भी ढग का होना चाहिये। कोई भी काम जब बेढगेपन से और सीमा से बाहर किया जाएगा तो वह लाभप्रद होने के स्थान पर हानिकारक बन जाएगा। पुरुष कहते हैं कि वे विवाह इसलिये करते हैं ताकि "रोटी टुकडे का आराम हो जाए।" सो जब विवाह होकर वहू ससुराल मे आती है तब से यह 'रोटी टुकडे का आराम' पहुँचाने का काम शुरू होता है और उसके साथ ऐसा चिमटता है कि अन्तिम साँस तक उसका पीछा नहीं छोड़ता।

चूँकि हमने अपना समय नहीं बाधा हुआ है, इसलिये अतिथि को यह आशा रहती है कि वह जब भी पहुँचेगा उसे भोजन मिल

जायगा। परिणाम यह होता है कि कोई किसी समय आवे—चाहे उस समय चौका उतर चुका हो, सब घर वाले खा पी चुके हों, और सब खाना समाप्त हो चुका हो—परन्तु अतिथि के लिये उसी समय फिर चूल्हा चढ़ाना पडता है। खाना पकाने का दैनिक कार्य-क्रम ही स्त्रियों की कमर तोड़ने वाला होता है। फिर असमय का अतिथि तो उस दिन को उनके लिये भारी असुविधा का दिन बना देता है।

समय असमय खाना खाने का हमारे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य का यह अत्यन्त आवश्यक नियम है कि भोजन प्रतिदिन निश्चित समय पर करना चाहिये। अनियमित समयों पर भोजन करने से पाचन शक्ति बिगड़ जाती है और पाचन शक्ति कमजोर हो जाने से अनेका रोग आ घेरते हैं।

ये सब कठिनाइया और कष्ट दूर हो सकते हैं यदि हम लोग अपने खाने-पीने के समय निश्चित करलें। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करने में कई रुकावटें हैं, परन्तु वे ऐसी नहीं हैं जिन्हें दूर न किया जा सके। खाने-पीने का समय न बाधने से जो कष्ट हमारी स्त्रियों को उठाना पड़ता है उसके मुक़ाबले में समय बाधने मे जो कठिनाई हमे होगी वह कुछ भी नहीं।

जो लोग व्यापार आदि मे लगे हुए हैं उन्हें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि वे निश्चित समय पर या तो खाना अपने ठिकाने पर मगवा लिया करें, या निश्चित समय पर घर आकर खा लिया करें। स्कूल जाने वाले बच्चों के भी दोपहर के खाने का प्रबन्ध

स्कूल की तरफ से होना चाहिए। उनके लिये गर्मियों मे सवेरे बिना खाये या बासी रोटी खाकर स्कूल जाना और दोपहर एक बजे आकर सवेरे का खाना खाना हानिकारक है। इसी तरह सर्दियों मे सवेरे खाकर जाने और फिर शाम को आकर खाने का अर्थ यह हुआ कि वे सारा दिन भूखे रहें। होता यह है कि वे अवकाश में छाबडी वालों से गन्दी, गली सड़ी और हानिकारक वस्तुए लेकर खा लेते हैं जिसका सिवाय हानि के और कोई परिणाम नहीं होता। परन्तु दोपहर के खाने का प्रबन्ध स्कूलों मे तभी हो सकता है जब विद्यार्थियों के मा बाप स्कूल के प्रबन्धकों को अपना पूरा सहयोग दें, और बच्चों को ऐसी खुराक दी जाए जो सुविधा के साथ तैयार हो सके तथा जो हो भी स्वास्थ्यदायक। यदि सामूहिक रूप से ऐसा प्रबन्ध किया जाए तो वह महगा भी नहीं पडेगा। खाना बच्चों ने जैसा घर पर खाना वैसा ही स्कूल में खाना। फिर छाबड़ी वालों से सौदा लेने के लिए उन्हें जो पैसे दिये जाते हैं वे भी इस प्रबन्ध में लगाए जा सकते हैं। और यदि इस प्रबन्ध मे थोडे से पैसे अधिक लग भी जाए तो बच्चों की सुविधा, स्वास्थ्य और हित के मुकाबले में यह बात कोई महत्त्व नहीं रखती। स्कूलों के प्रबन्धक अथवा सरकार भी इस प्रबन्ध में आर्थिक सहायता देकर हाथ बटा सकती है।

घरों में बच्चे बड़ा तग करते हैं और सारा दिन खाने की चीजें मागते रहते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि घरों में बडे लोग बारी-बारी खाना खाते हैं और, जैसा कि हम ऊपर

लिए चुके हैं, अधिकाश घरों में पुरुषों के भोजन के समय बहुत भिन्न होते हैं, इसलिये बच्चे भी उन्हें खाना खाते देखकर खाना मागते रहते हैं। यदि सब घर वाले एक साथ बैठकर भोजन करें और बच्चे भी सबके साथ बैठकर भोजन करें तो न वे किसी को असमय भोजन करते देखेंगे और न समय असमय भोजन मांगेंगे। अनुभव करके देखा गया है—और कोई भी सज्जन यह प्रयोग अपने घर में करके देख सकते हैं—कि बच्चे हर काम के लिये समय नियत करने को बहुत पसन्द करते हैं। यदि उनके जिम्मे यह कार्य लगा दिया जावे कि वे खाने के नियत समय पर घंटी बजावें, या सबको बुलाकर लावें तो वे ऐसा काम बड़ी खुशी से करेंगे। क्या मजाल जो वे ऐसे काम से तनिक भी उकता जाए। परन्तु शर्त यह है कि हम नियत समय की स्वयं पूरी पाबन्दी करें और उन्हें शिकायत का कोई मौका न दें। कुछ दिनों बच्चे हुए समय पर भोजन करने से उनको यही आदत पड़ जाती है। फिर वे समय असमय खाना नहीं मागते। हां, जो बहुत छोटे बच्चे (शिशु) हों उन्हें अवश्य अपने भोजन के समय से पहले या पीछे दूध आदि दे देना चाहिए। उन्हें खाने पर अपने साथ बिठाने से वे भी रोटी आदि मागने लगते हैं और उस आयु में उन्हें रोटी नहीं देनी चाहिए। परन्तु यह परम आवश्यक है कि छोटे बच्चों को दूध, फलों का रस इत्यादि जो भी देना हो, वह निश्चित समय पर दिया जावे। बच्चे के तनिक सा रोने पर माताए उन्हें दूध पिलाना या कुछ

और खिलाना पिलाना शुरू कर देती है। वे समझती हैं कि खिलाना पिलाना बच्चों के रोने की एक अचूक, अमोघ दवा है। परन्तु बच्चों का स्वास्थ्य बिगाड़ने का इससे अधिक सरल और अचूक उपाय अन्य कोई नहीं है।

हमें भी अन्य उन्नत देशों की भाति सारे देश के लिये खाने-पीने के समय बाध लेने चाहियें। कुछ लोगों ने, जो पश्चिमी सभ्यता पर चल रहे हैं, इस प्रकार की प्रथा अपने घरों में अपना ली है। परन्तु हम सबको इस प्रथा पर चलना चाहिये। अच्छी बात किसी से भी सीख कर धारण करना कोई बुरी बात नहीं है।

यदि हम देश-व्यापी स्तर पर ऐसा कुछ प्रबन्ध करेंगे तो स्कूलों और दफ्तरों को भी अपने समय इस तरह निश्चित करने पड़ेंगे जिससे यह दैनिक कार्य-क्रम समय पर हो सके। स्टेशनों पर हॉकर सवेरे से लगाकर रात के १२ १२ बजे तक रोटी आदि की आवाजें देते रहते हैं। यदि सब लोगों का एक निश्चित समय पर भोजन करने का रिवाज हो तो टाइम टेबल में उस समय गाड़ी जिस स्टेशन पर पहुँचने वाली हो उस समय वहा स्वच्छ, शुद्ध और ताज़ा भोजन मिल जाए।

घरों में एक और भी कठिनाई है—भोजन पकाने वाली स्त्रिया किस प्रकार अन्य घर वालों के साथ बैठकर भोजन करें। परन्तु यह कोई कठिन बात नहीं है। साग भाजिया तो सब घरों में पहले बन ही जाती हैं, फुलके या पराठे आदि बनाकर दबाकर

किसी बरतन मे रखे जा सकते हैं। इस तरह सारा सामान अपने पास रखकर सब लोग इकट्ठे बैठकर आनन्द-पूर्वक खा सकते हैं। हा, 'खाने का सामान रसोई से बाहर नहीं जा सकता,' यह विचार बदले हुए और नित्य बदलते हुए युग को दृष्टि में रखते हुए छोड़ना पडेगा। भारत के कई भागों मे भोजन को दो श्रेणियों मे बाटा हुआ है—'कच्चा' (फुलके दाल, भात, तथा कुछ विशेष साग आदि) और 'पक्का' (पराठे, पूरी, कुछ भाजिया आदि।) 'पक्का' भोजन रसोई से बाहर आ सकता है, परन्तु 'कच्चे' के बाहर आने से वह अशुद्ध, अपवित्र हो जाता है, लोग ऐसा मानते हैं। इस विभाजन का क्या वास्तविक अर्थ है इसे कोई नहीं जानता। आधुनिक युग में इन व्यर्थ के वहमों को छोड़ना पडेगा। नये युग की आवश्यकताओं के अनुसार हमें अपने भोजन सबन्धी विचार, रिवाज और प्रबन्ध भी बदलने पड़ेंगे।

साथ बैठकर खाना खाने का एक यह भी लाभ है कि बच्चे भी ठीक ढग से भोजन करना सीख जाते हैं। बड़ों को देखकर उन्हें भी सभ्यता और उचित तरीके से खाना खाना पड़ता है। परन्तु बड़ों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि छोटों को खाने के समय झिड़काया धमकाया न जाए। ऐसा करने से साथ बैठकर खाने-पीने का आनन्द जाता रहता है। साथ बैठकर खाने का आनन्द और लाभ तभी है जब मन हँसी खुशी खाए-पीएं। उस समय किसी का क्रोध करना और किसी का रूठना, मुँह बिसूरना या नाराज होना सारे आनन्द को समाप्त कर देता है।

हँसी-खुशी सब मिल कर खाए-पीए तो खाने मे चौगुना स्वाद आता है और इस तरह खाया हुआ खाना शीघ्र पच जाता है।

साथ बैठकर खाना खाने का एक बडा भारी लाभ यह है कि घर के सब व्यक्तियों में बडा स्नेह हो जाता है। यदि घर के कुछ व्यक्तियों मे मन मुटाव हो भी गया हो तो साथ बैठकर भोजन करने से वह मन मुटाव एव मनोमालिन्य दूर हो जाता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को व्यापार में अथवा दफतर के किसी कार्य के सिलसिले मे अथवा किसी और मामले के सम्बन्ध मे कोई विशेष परेशानी एव चिन्ता हो तो वह भी थोडी देर के लिये दूर हो जाती है।

खाने-पीने के सम्बन्ध मे एक और बात जो बडी आवश्यक है वह यह है कि भोजन करने का स्थान भी एक निश्चित स्थान होना चाहिये। यह अच्छा रहेगा कि वह स्थान रसोई के निकट हो। यदि मकान थोडा बडा हो तो सुविधा-पूर्वक हम भोजन के लिये अलग स्थान नियत कर सकते हैं। यदि मकान बहुत छोटा हो तो भी पर्दे आदि डालकर थोड़ी सी जगह इस काम के लिये अलग नियत कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह बात भी बहुत अच्छी रहेगी कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ कुर्सिया और एक बड़ी सी मेज इस काम के लिये रख ली जावें। यह आवश्यक नहीं है कि मेज-कुर्सिया कीमती ली जावें। सामर्थ्य थोडी हो तो साधारण भी ली जा सकती हैं। वे भी उतना ही काम देंगी जितना कीमती मेज-कुर्सिया देती हैं। जो स्थान खाने के लिये नियत

किया जावे वह बहुत स्वच्छ रखा जाए और प्रतिदिन उसकी समुचि
सफाई होनी चाहिये। उस स्थान की छत को विशेप रूप से सा
करते रहना चाहिये। छत मे जाले आदि न लगने देने चाहिय
कई बार छत में से मकड़ी, कीडे आदि भोजन की चीज़ों मे गि
पड़ते हैं। कई बार उनका पता भी नहीं लगता और उनसे ब
हानि पहुँच जाती है। यदि मेज-कुर्सी का प्रयोग न करना चाहें
बैठने का उचित प्रबन्ध हो सकता है। इस सूरत मे आसन आ
बडे साफ़ होने चाहिए और फ़र्श भी साफ़ होना चाहिए। पर
चूकि फ़र्श पर गन्दगी पडती रहती है—कितनी ही बार छो
बच्चे फ़र्श पर मल मूत्र त्यागते रहते हैं—इसलिये मेज-कुर्सि
का प्रबन्ध अधिक अच्छा है। हा, सफ़ाई मेज-कुर्सियों की
उचित तौर पर होनी चाहिए। चारपाइयों पर बैठकर भोजन न
करना चाहिये। उन्हीं पर हम सोते हैं, उन्हीं पर बच्चे मल मू
त्याग देते हैं। इसलिये उन पर बैठकर और थाली रखकर खाना
खाना उचित नहीं है।

घरों का परस्पर जीवन

हमारा घरेलू जीवन कुछ ऐसा फीका और बेस्वाद होता है कि हमें मनोरंजन एव दिल बहलावे के लिये और जगहों में भटकना पड़ता है। हम घर को रोटी खाने, सोने या खर्चे के लिये रुपये लेने का स्थान ही समझते हैं। हमारे दिलों में घर के लिये वह मोह और प्यार नहीं होता जो होना चाहिये। बच्चे भी घरों को आवश्यक वस्तुए प्राप्त करने का स्थान या अपना सिर छुपाने एव सोने की जगह समझते हैं। हमारी माताओं के लिये घर अगणित जंजाल और झंझटों का स्थान है। जब कभी उन्हें अकेली गली मुहल्ले में या कहीं भी जाने का अवसर मिल जाता है तो उन्हें बडी प्रसन्नता होती है, और वे सुख का सांस लेती हैं। हमारे पिता या अन्य 'बडे' तो घर में केवल शासन करने के लिये ही आते हैं।

हमारे घरों के जीवन की जो वर्तमान प्रणाली है उसमें तो घर के किसी भी व्यक्ति को सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। हो भी कैसे? लड़के-लडकियों को तो माता पिता की झाड़ और डाट डपट ही प्राप्त होती है, इस लिये वे घर को सुख और आनन्द का स्थान कैसे समझ सकते हैं? माता पिता के साथ न वे खुलकर बातें कर सकते हैं, न उनके साथ खेल सकते

हैं, न उन्हें अपने मन की कोई आन्तरिक बात कह पाते हैं। बाप को वे एक हौवा समझते हैं। मा उन्हें उसका नाम लेकर डराती रहती है। इसलिये घर में बाप के घुसते ही सब बच्चे चुप हो जाते हैं, बाप की एक घुड़की उनके लिये काफी है।

घर के सारे प्राणी किसी समय इकट्ठे नहीं होते। हों भी कैसे, जबकि हमने अपनी दिनचर्या मे कोई ऐसा नियम और कोइ ऐसा समय रक्खा हुआ ही नहीं है। रोटी हम इकट्ठे बैठ कर नहीं खाते, न ही किसी और अवसर पर हम सारे मिलकर बैठते हैं। यदि बातें करने का अवकाश या अवसर हो भी तो माता पिता अलग बैठेंगे, बहिनें अलग और भाई अलग। कभी २ मा के पास बैठकर तो भले ही सारे बहिन भाई इकट्ठे होकर बातचीत करलें, परन्तु मा और बाप दोनों के होते हुए सारे बेटे बेटियां कभी उनके साथ मिलकर नहीं बैठते। यह इसलिये है कि हम ने शुरू से ऐसा अभ्यास नहीं डाला हुआ। यदि हम उन्हें बचपन से इस बात के लिये प्रोत्साहित करें कि वे मा-बाप के साथ मिलकर बैठें और उनके साथ खुलकर बातें करें, तो वे बड़े होकर कभी इतना सकोच न करें।

क्या घर केवल सोने और रोटी खाने का ही स्थान है ? क्या वह दुखों और झगड़ों और क्लेशों का केन्द्र है जहा घर वाले कैदी की भाति जीवन काटने के लिये विवश हैं ? अभी तक तो हमने घर को कैदखाना और नरक बनाया हुआ है, इसमें कोइ सन्देह नहीं है।

ऐसे रूखे और बेस्वाद जीवन का क्या परिणाम हो रहा है ? हमें अपने घरों से कोई प्यार नहीं, क्योंकि घरों में खुशी के, आनन्द के, कोई साधन नहीं। हम खुशी और मनोरजन प्राप्त करने के लिये मित्रों के पास चले जाते हैं, या सिनेमा थियेटर, क्लब अथवा अन्य मनोविनोद के स्थान ढूढते हैं। हमारा घर के व्यक्तियों के साथ पारस्परिक प्यार नहीं होता, क्योंकि हम कभी मिलकर बैठे ही नहीं, और न ही हमने कभी एक दूसरे के विचारों और भावों को समझने का प्रयास किया है। यही कारण है कि हम लोग सभा-सोसाइटियों में भी मिलकर काम नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे अन्दर घर में मिलकर बैठने का भाव ही नहीं भरा गया। जब हम घरों मे बच्चों को अपने विचार और भाव प्रकट करने का स्वाधीनता नहीं देते, तो उनमें अपने विचारों और भावों को नि सकोच प्रकट करने की आदत ही नहीं पड़ती। इसलिये बडे होकर भी वे अपने विचारों और भावों को खुले दिल से और निडरता के साथ प्रकट करने मे असमर्थ रहते हैं। घर में हर समय मा-बाप की इच्छा के अनुकूल चलना पड़ता है, हम चू-चरा नहीं कर सकते। चाहे किसी मामले में हमारे मा-बाप ठीक हों, परन्तु न वे कभी अपने विचार हमारे सामने प्रकट करके हमें समझाने की कोशिश करते हैं, और न हम समझने की कोशिश करते हैं, क्योंकि हमारे विचारों को समझने की भी तो कोई कोशिश नहीं करता।

पता नहीं हमारा घरेलू जीवन सदा से ऐसा चला आ रहा है,

या अभी यह ऐसा गया-बीता हो गया है। जब सम्मिलित कुटुम्ब एक ही जगह रहते थे, तब शायद यह रिवाज ठीक हो। जब एक ही घर मे कई सास बहुए, देवरानिया-जेठानिया, भाई भाई, तथा अनेकों पुत्र पुत्रिया रहते थे और सब का भोजन एक ही रसोई में बनता था, तब शायद यह रिवाज ठीक होगा कि स्त्रियों की टोली अलग बैठी है और पुरुषों की अलग, लड़कों की अलग और लड़कियों की अलग। परन्तु अब तो सारा भाईचारा छिन्न भिन्न हो चुका है। अब तो एक पति-पत्नी और उनकी सन्तान-- ये इतने ही व्यक्ति इकट्ठे रहते हैं। यदि एक वंश में कई भाई हैं तो उनके परिवार पहले समय की भाति इकट्ठे नहीं रहते, वरन् सब अलग अलग रहते हैं। इस परिस्थिति मे यह और भी आव श्यक है कि घर के बाल-बच्चे, बडे-बूढे, स्त्री-पुरुष सब मिलकर बैठें, उनमे आपस मे स्नेह हो और सब एक दूसरे के विचारों, भावों और कठिनाइयों तथा आकांक्षाओं को सहानुभूतिपूर्वक समझने का प्रयास करें।

हमे अपने घर स्वर्ग के समान बनाने चाहियें, जहा घर का प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने काम से खुशी-खुशी घर आवे, घर के सारे प्राणी रल मिलकर उठें-बैठें, खेलें, खाए-पीएं तथा इकट्ठे प्रसन्नतापूर्वक समय बिताएं, एक-दूसरे की बातें सुनें, एक-दूसरे के काम-काज को रुचि-पूर्वक सुनें-समझें, और विचारों का खुले तोर पर आदान प्रदान करें। जब तक हम लोग घरों में इस तरह नहीं उठें-बैठेंगे हमारे अन्दर परस्पर प्रीति नहीं हो सकती।

यह तभी होगा जब मा-बाप बच्चों को अपना दास और सेवक समझना छोड़ देंगे और यह ख्याल त्याग देंगे कि बच्चों को बिल्कुल समझ नहीं होती, तथा घर में जो कुछ हो वह केवल मा-बाप की इच्छा अनुकूल ही हो। जब तक माताओं-पिताओं का व्यवहार और दृष्टिकोण नहीं बदलेगा तब तक घर के सब व्यक्तियों का इकट्ठा बैठना असम्भव है।

घरेलू जीवन का यही उद्देश्य होना चाहिये कि वह घर के सब प्राणियों को अधिक से अधिक सुख, शान्ति और आनन्द दे। अन्यथा रोटी खाने और सोने बैठने के तो और भी बहुतेरे स्थान हो सकते हैं। बच्चे पैदा करके उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करके और जब वे बड़े हो जाए तो उनका विवाह करके हम लोग यह समझकर सन्तुष्ट हो जाते हैं कि हमने अपने कर्तव्य का पालन कर दिया। परन्तु इन सब बातों का कोई लाभ नहीं, यदि हम उन्हें अच्छी आदतें न सिखाएं और अच्छी शिक्षा न दें। आज-कल हमारे घरों का जैसा जीवन है वह हमें ऊँचा नहीं उठा सकता। बल्कि वह हमें यह अनुभव कराता है कि हमारा घरेलू जीवन बड़ा दुखदायक है। यदि हम आने वाली पीढ़ियों का भला चाहते हैं, तथा अपने देश और राष्ट्र की उन्नति चाहते हैं तो हमें अपना घरेलू जीवन सुधारना चाहिये।

आदर्श घर

आदर्श घर ऐसा होना चाहिये जहा प्रत्येक की उचित प्रतिष्ठा हो, प्रत्येक का परामर्श लिया जावे, प्रत्येक को बढ़ने और फलने फूलने की पूरी स्वतन्त्रता मिले, बड़े छोटे सब के विचारों को समझने का प्रयास किया जावे, किसी का मन न दुखाया जावे, तथा प्रत्येक के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश की जावे।

घर आनन्द और शान्ति का स्थान होना चाहिये जहा घर के सारे प्राणी अपने काम-काज से खुशी-खुशी वापस आए, अपनी रोज की आप बीती चाव के साथ एक-दूसरे को सुनावें, सब एक दूसरे के कामों के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट करें, एक-दूसरे को परामर्श और राय दें, तथा सब एक-दूसरे के काम में सहानुभूतिपूर्वक दिलचस्पी लें।

घर के सब प्राणी सवेरे जल्दी उठें, सारे प्रातःकर्मों से बारी बारी निवृत्त होकर, इकट्ठे मिलकर बैठें, सारे इकट्ठे खा-पीकर अपने अपने कामों पर चले जाए। शाम को भी सारे इकट्ठे बैठकर थोड़ी देर बातचीत करें, सारे मिलकर एक साथ थोड़ा खा पी लें। उसके बाद जिसे खेलने जाना हो वह खेलने चला जाए, जिसे किसी से मिलने जाना हो वह मिलने चला जाए, तथा जिन्हें घर के काम-काज करने हों वे अपने कामों में लग जाए। रात के

भोजन के समय सब ठीक समय पर वापस आ जाए और सब मिलकर खाए-पीए, हँसें खेलें, गाए बजाएं, पढ़े-लिखें तथा सब कामों से निवृत्त होकर और पूरा सन्तोष, सुख और आनन्द प्राप्त करके समय पर सो जाए।

घर के कामों में सब घर वाले अपनी आयु और शक्ति के अनुसार हाथ बटाए, किसी प्रकार के भी काम से कोई घृणा न करे। सारे काम बाटकर सुन्दर ढग से और प्रेम-पूर्वक किये जावें, सब कामों में परामर्श देने योग्य व्यक्तियों से परामर्श लिया जावे और सब की साँझी सलाह से काम किये जावें। घर में खाने-पीने की चीजें तथा अन्य जितने सुख-सुविधा के सामान हों उन पर सब का समान अधिकार माना जावे और सब उनका अपने हिस्से तथा आवश्यकता के अनुसार उपभोग करें।

घर के तथा अपने व्यवसाय के काम के अतिरिक्त सब को कुछ और भी शौक होने चाहिए—साहित्य, सगीत, लिखना-पढ़ना, सेवा, विज्ञान, कला-कौशल आदि, जिनसे दिल-बहलाव होता रहे। ऐसे कामों में शेष घर वालों को हस्ताक्षेप नहीं करना चाहिये, वरन् जहां तक हो सके एक दूसरे की सहायता करनी चाहिये और उत्साहित करना चाहिये। उत्साह मिलने पर ऐसे कामों में मन लगा रहता है। जीवन का दुगुना आनन्द आता है और जीवन की कठिनाइया, कड़वाहटें, और कष्ट हल्के हो जाते हैं।

घर वालों का एक दूसरे के साथ व्यवहार बड़ा मधुर और सहानुभूति-पूर्ण होना चाहिये। पति अपनी पत्नी का निरादर न

करे, न पुत्र-पुत्रियों के सामने उसको झिड़के झाड़े, न औरों के बैठे हुए अपनी कोई बात मनवाने के लिये हठ करे और उसकी रद्द करे। न स्त्री किसी अन्य के सामने अपने पति के साथ कड़ुवा बोले, न किसी से उसकी शिकायतें करे, न उसकी नीयत पर सदेह करे, तथा अपने सास-ससुर का पूरी तरह आदर करे। मा बाप अपने सब बेटे बेटियों को समान दृष्टि से देखें, किसी के साथ विशेष अनुग्रह का या विशेष उपेक्षा का व्यवहार न करें, अपने आपको सन्तान के सहायक और पथ-प्रदर्शक समझें, शासक न समझें, अपने को उनके लिये हौवा न बनाए, उन पर ज़रा-ज़रा सी बात पर क्रोध न करें, किसी के भी सामने—और विशेष कर उनके मित्रों एव सहपाठियों के सामने—उनका निरादर अपमान न करें, सदा उनकी गलतियों को सहानुभूतिपूर्वक समझने का यत्न करें, तथा उनका विचार शान्तिपूर्वक सुनकर अपना विचार धैर्यपूर्वक उन्हें बताए। प्यार वह काम कर दिखाता है जो मार कभी नहीं कर सकती। अबोध शिशु-हृदय पर बड़े कभी आघात न पहुँचाए, उनके प्रति वे स्नेहपूर्ण-व्यवहार करें। छोटे हाथों और कोमल-मति के छोटे, अधूरे और बेढगे कामों पर मा बाप अथवा अन्य बड़े हँसकर उनका दिल न तोड़ें। उनके कामों को उनकी बुद्धि और बल के नापमान से परखने का प्रयत्न करें, अपनी बुद्धि और बल की तराज़ू से उन्हें न तोलें, छोटे-मोटे कामों में उन्हें स्वाधीनता दें और उनकी शक्ति, समझ-बूझ और निर्णय-

शक्ति पर भरोसा करें तथा उनमें आत्म विश्वास की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न करें।

घर के जीवन में ऐसे अवसर भी होने चाहियें जब सगे-सम्बन्धी और मित्र आदि आवें, सब मिलकर उठें-बैठें, खाए-पीए, हँसे-खेलें और रंग-रलियां मनाए। परन्तु रस्मी आना-जाना, लेना देना बिल्कुल नहीं होना चाहिये। जिनके दिल न मिलें, जिनकी रुचियां आपकी रुचियों से मिलती हों और जो रस्मी बातों को महत्त्व न दें, वे मिलकर बैठें। बच्चे अपनी आयु के बच्चों के यहाँ आए-जाए, उन्हें अपने घर बुलाए और मिल-जुल कर आनन्द की दो घड़ियां बिताए। ऐसे अवसरों पर बड़ों को चाहिये कि वे बच्चों की टोली की सहायता करें, परन्तु उनके खेलों और बातों में अनधिकृत हस्तात्तेप न करें। आए हुए बच्चों का आदर-सत्कार किया जाए, परन्तु होवे सब कुछ सादा, सुथरा और प्रेम सहित। जवान लड़के-लड़कियां अपनी आयु के लड़के-लड़कियों के साथ मेल जोल तथा आना-जाना रखें, मां-बाप ऐसे सम्बन्धों को सदेह की दृष्टि से न देखें।

जन्म, मरण, शोक, हर्ष विवाह आदि के अवसर सीधे स्वभाव, सरलता-पूर्वक, आराम के साथ आए और निकल जाए। खुशी के अवसरों पर अपनी शान दिखाने का अनुचित यत्न न किया जावे, न ही शोक के अवसरों पर अपनी मानवी दुर्बलता और अपने शोक को अधिक व्यक्त किया जावे। आनन्द के समय भी और दुख के समय भी प्रभु की इच्छा को सर्वोपरि समझना

चाहिये तथा हर प्रकार के दिखावे से दूर रहना चाहिये। विवाह न पुत्र का भारी मालूम हो, न पुत्री का। विवाह का समय ऐसा मालूम हो जैसे कोई बच्चा एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में चढ़ा हो। न बेटी के ससुराल मे जाने पर आसुओं की झड़ी लगाई जाए, न घर मे वहू के आने पर खुशी से पागल बना जाए।

विवाह के बाद कभी कभी बेटे, बेटियां, बहनें, भाई अपने बच्चों समेत आए। परन्तु अपने सब ऊपरले खर्च वे स्वय करें। किसी बच्चे को कोई विशेष चीज खाने के लिये दी जाती हो, उसका खर्च, धोबी, दर्जी, डाक्टर तथा कपडे आदि का खर्च अपने अपने बच्चों का अलग-अलग हो। आने वाले रेल, तांगे, लारी आदि का खर्च अपनी-अपनी जेब से दें। बिस्तरे, कपडे अपने लिये साथ लायें। चीज-वस्तु भी अपने लिये स्वय खरीदी जायें। केवल भोजन सब का सम्मिलित हो। आए-गए के दर्शन तभी मीठे और सुखद लगते हैं जब घर वाले पर कोई फालतू बोझ न पडे। इस तरह भाई, बहन, बेटी, अतिथि आदि की प्रतिष्ठा और सन्मान बढ़ता है। उनके आत्म सम्मान की भी तभी रक्षा हो सकती है।

यदि दो तीन कुटुम्ब एक ही घर मे इकट्ठे रहते हों तो उनका आपस का हिसाब जितना साफ रहे उतना ही अच्छा। इस से झगडे का कारण कम हो जाता है, और आपस का स्नेह बढ़ता है। हिसाब मे सगे पिता-पुत्र को भी पाई-पाई का लेखा चुकती कर देना चाहिये।

सारांश यह है कि हमारा घरेलू जीवन पारस्परिक स्नेह, एक-दूसरे को समझने, एक-दूसरे के सुख-दुख में हाथ बंटाने, तथा निःस्वार्थ व्यवहार पर अवलम्बित होना चाहिये । तभी हमारा घरेलू जीवन सुख और आनन्द का देने वाला और स्वर्ग की समता करने वाला होगा ।

चाहिये तथा हर प्रकार के दिखावे से दूर रहना चाहिये। विवाह न पुत्र का भारी मालूम हो, न पुत्री का। विवाह का समय ऐसा मालूम हो जैसे कोई बच्चा एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में चढ़ा हो। न बेटी के ससुराल में जाने पर आंसुओं की झड़ी लगाई जाए, न घर मे बहू के आने पर खुशी से पागल बना जाए।

विवाह के बाद कभी-कभी बेटे, बेटियां, बहनें, भाई अपने बच्चों समेत आएं। परन्तु अपने सब ऊपरले खर्च वे स्वयं करें। किसी बच्चे को कोई विशेष चीज खाने के लिये दी जाती हो, उसका खर्च, धोबी, दर्जी, डाक्टर तथा कपडे आदि का खर्च अपने अपने बच्चों का अलग-अलग हो। आने वाले रेल, तांगे, लारी आदि का खर्च अपनी-अपनी जेब से दें। बिस्तरे, कपडे अपने लिये साथ लायें। चीज-वस्तु भी अपने लिये स्वयं खरीदी जायें। केवल भोजन सब का सम्मिलित हो। आए-गए के दर्शन तभी मीठे और सुखद लगते हैं जब घर वाले पर कोई फालतू बोझ न पडे। इस तरह भाई, बहन, बेटी, अतिथि आदि की प्रतिष्ठा और सम्मान बढ़ता है। उनके आत्म सम्मान की भी तभी रक्षा हो सकती है।

यदि दो तीन कुटुम्ब एक ही घर में इकट्ठे रहते हों तो उनका आपस का हिसाब जितना साफ रहे उतना ही अच्छा। इस से झगड़े का कारण कम हो जाता है, और आपस का स्नेह बढ़ता है। हिसाब में सगे पिता-पुत्र को भी पाई-पाई का लेखा चुकती कर देना चाहिये।

साराश यह है कि हमारा घरेलू जीवन पारस्परिक स्नेह, एक-दूसरे को समझने, एक-दूसरे के सुख दुख में हाथ बटाने, तथा निःस्वार्थ व्यवहार पर अवलम्बित होना चाहिये । तभी हमारा घरेलू जीवन सुख और आनन्द का देने वाला और स्वर्ग की समता करने वाला होगा ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

एक सरल और सुगम विवाह का प्रयोग

किसी भी प्रचलित रीति का सुधार करते समय कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बड़ों का दोष, रिश्तेदारों की नाराजगी, भाईचारे की नुक्ताचीनी, मित्रों के उपालम्भ तथा अन्य और भी कुछ। सहयोग और सहानुभूति तो कोई विरला ही देता है, नये विचारों को कोई ही समझता है, तथा मतभेद को सहन करने वाला कोई-कोई ही मिलता है। एक युवक हृदय ने इस कठिन घाटी को लाघने का प्रयत्न किया—अगले पृष्ठों में उसके विवाह की संक्षिप्त कहानी लिखी गई है। मुह से कही गई बातें तथा झगड़े, चिट्ठी, पत्री, कार्य का पूर्ण होना आदि सब बातें इसमें दी गई हैं। यह एक स्वप्न या मनघड़त या कोरी कहानी नहीं है वरन् किसी की सची आप-बीती, सन् १६२७-३७ के बीच में घटी हुई घटना का वर्णन है।

विवाह से पहले के झगड़े

किसी बड़ी बूढी ने मुँह से बात निकाली, दूसरी ने कहा, "घर आई लक्ष्मी कहीं लौटाई जा सकती है।" किसी की भतीजी होने के नाते स्त्रियों ने 'हां' कर दी। पुरुषों ने भी गोल मोल बात कर छोडी और बात पक्की हो गई, ऐसा समझ लिया गया। दस वर्षीया बाला क कानों तक बात न पहुँची, परन्तु कालिज में पढने वाले सत्रह-वर्षीय लडके को खबर मिल गई। लडके ने शोर मचाया और पिता ने विश्वास दिलाया कि तुमसे पूछे बिना कुछ भी नहीं किया जायगा। माँ-बाप ने समझा कि आजकल के कालिज के लडकों की तरह 'ऐसे ही' शोर मचा रहा है, स्वय ही मान जायगा। परन्तु लडके ने इतना झगडा खडा कर दिया कि दस साल तक किसी को चैन से न बैठने दिया। आगामी पृष्ठों में दिये गये कुछ पत्रा द्वारा पता लग सकेगा कि क्या-क्या झगडे पडे और उनका निपटारा किस प्रकार हुआ।

भतीजे की ओर से चाचा को

मेरे ससुर साहिब ने कई बार कहा है कि आपको 'ज' की सगाई के विषय मे कहूँ, जिससे बात पक्की हो जावे। मैं उन्हें सदैव यही कह देता हूँ कि मुँह से कहना ही काफी समझना

नोट —इस कहानी में 'ज' लड़के का नाम है और 'भ' लड़की का। लड़की का फूफा मध्यस्थ (बिचोला) था, जो लड़के के ताऊ का पुत्र था अथवा लड़के के पिता का भतीजा। लड़की बिचोले के साले (डाक्टर साहिब) की पुत्री थी।

चाहिये, परन्तु वे बार-बार सगाई की रस्म अदा करने के लिए कह रहे हैं। जब आप लाहौर आए थे उस समय भी आपसे कहा गया था, परन्तु आपने कोई निश्चित जवाब नहीं दिया इसलिये उन्हें चिन्ता हो गई है। सो कृपा करके बहुत शीघ्र मुझे साफ़ साफ़ लिखें कि आपकी क्या इच्छा है, जिससे मैं उन्हें कुछ उत्तर दे सकूं।

चाचा की ओर से भतीजे को

तुम्हारा पत्र पढ़ कर बड़ी हैरानी हुई। मालूम होता है कि जो कुछ मैंने अपने पहले पत्र मे तुम्हें लिखा था, उससे तुम्हारी तसल्ली नहीं हुई है। जैसा तुम्हें पहले लिखा था कि 'ज' के लिये अन्य किसी सम्बन्ध की बात-चीत नहीं की जाएगी, तथा तुम्हारे कहे को बिना किसी विशेष कारण के अस्वीकार नहीं किया जायगा। 'ज' अभी सगाई कराने के लिये सहमत नहीं है। परन्तु तुम इस विषय में चिन्ता न करो। उसकी शर्तें यह हैं कि वह विवाह उस समय करेगा जब वह स्वयं अपनी कमाई करने लगेगा—साथ ही यह विवाह की रस्मों में भी सुधार करना चाहता है। सो जो जो भी उचित सुधार वह कहे, वे तो हमें करने ही पड़ेंगे।

वास्तव में 'ज' विवाह के समय से पूर्व अपने को बाँधना नहीं चाहता। यह पत्र उसने पढ़ लिया है।

घर में तू-तू, मैं-मैं

घर में एक कान्फ्रेंस हुई। तीन चार सम्बन्धी इकट्ठे हुए—

लड़के की मुसीबत आ गई, "या 'हा' कर, या 'ना' कर।" माँ ने कहा, "अगर 'ना' की तो मैं घर से निकाल दूगी और पढ़ाई का कोई खर्च नहीं दिया जायगा।" भाई (ताऊ का वेटा) ने कहा, "तू ता है ही पागल, तुझे तो अक्ल ही नहीं।" लड़के को विवश करके उससे 'हा' करवाने का प्रयत्न किया गया। लड़का कह वैठा, "आपने किससे पूछ कर वचन दिया था?" "वर्षों से भी कभी किसी ने पूछा है? हमें क्या मालूम था कि तू इतना उद्दण्ड है और ऐसे नखरे करेगा।"

लड़का पराधीन था—विवश हो गया और एक पत्र मे अपने विचार लिख कर भेज दिये।

लड़के का पत्र

पिछले तीन चार वर्षों से मैंने अपने विवाह के विषय मे कोई बात नहीं चलने दी—कारण कि मैं अपने विवाह की रस्मों मे जहाँ तक सम्भव हो सुधार करना चाहता हूँ। परन्तु चूँकि इस सम्बन्ध मे मैं अभी तक अपने विचार पुष्ट नहीं कर सका हूँ और केवल पढ़ता, सोचता और विचार करता रहा हूँ, इसलिये निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता कि इस सम्बन्ध मे मेरे निश्चित विचार क्या होंगे। केवल यही कारण है जिससे मैं अभी तक अपने विवाह की बात करने से इन्कार करता रहा हूँ। जब तक इस विषय में मेरे विचार निश्चित न हो जाय तब तक मैं अपने को बन्धनों मे नहीं जकड़ना चाहता, क्योंकि एक बार बन्धन मे पड़ने के पश्चात् दूसरे पक्षवालों को किसी भी सुधार के लिये सहमत करना कठिन

होगा। इसीलिये मैंने यह धारणा की थी कि पहले सुधारों के विषय में अपने विचारों को निश्चित कर लूँ, फिर कोई विवाह सम्बन्ध करने का विचार करूँगा और सम्बन्ध होने से पहले अपनी सभी शर्तें स्वीकार करा लूँगा। मैंने सुधार करने का प्रण किया हुआ है तथा मेरे मतानुसार वे सुधार विद्रोहात्मक अथवा लज्जास्पद न होंगे। मैं यह भी स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि सुधार की योजना प्रस्तावित करते समय मैं यह कदापि नहीं सोचूँगा कि लोग मेरे विषय में क्या-क्या कहेंगे।

इसी कारण मैंने अपने को 'निकम्मा' और उद्दण्ड कहलवाया है। परन्तु अब जब भाई साहब ने यह विश्वास दिलाया है कि वे मेरे प्रस्तावित सुधारों के विषय में डाक्टर साहब को सहमत करा लेंगे, तो मैं भी निम्नलिखित शर्तों पर पिता जी के दिए हुए वचन को पूरा करने के लिये तैयार हूँ —

१ यह सम्बन्ध तभी होगा जब यह निश्चित हो जाए कि हम दोनों का स्वास्थ्य उस समय पूर्ण रूप से ठीक है और कोई पैतृक रोग हम दोनों में से किसी को नहीं है।

२ जब तक मैं स्वयं कमाई न करने लगूँगा तब तक न तो सगाई करूँगा और न ही विवाह—और कम से कम अपनी पढ़ाई समाप्त करने के ६ महीने पश्चात्।

३ लड़की अच्छी पढ़ी लिखी होनी चाहिए।

४ सगाई से पहले किसी प्रकार की रस्म न की जावे।

५ जो भी सुधार मैं विवाह अथवा सगाई के सिलसिले में

रक्खूंगा वे सभी मानने पड़ेंगे। इस समय में इस विषय में कुछ भी नहीं कह सकता, केवल इतना ही विश्वास दिला सकता हूं कि वे सभी विवाह को सरल और आडम्बर-हीन बनाने के लिये ही होंगे। मैं रुपया आदि नहीं मागूँगा और न ही दहेज को आने दूँगा।

६ जब तक सगाई न हो जावे तब तक इस सम्बन्ध में बहुत ढिंढोरा न पीटा जाय।

यदि उपरोक्त सभी शर्तें पूरी हो जाय तो मैं भी अपना वचन पालन करूँगा और अन्य कोई सम्बन्ध स्वीकार न करूँगा।

पुत्र की ओर से पिता को पत्र

मैंने अपने पहले पत्र मे यह स्पष्ट रूप से लिखा था कि मेरा यह आशय नहीं है कि मैंने वहाँ सगाई कर ली है, परन्तु मैं यह देख रहा हूँ कि सारे परिवार मे यह बात फैली हुई है कि मैंने वहा सगाई तय कर ली है।

नितान्त असत्य यह बात फैलने के कारण मेरे मन मे बहुत क्रोध आता है। मैंने तो यह शर्त रक्खी हुई थी कि विवाह के समय से पहले सगाई कदापि नहीं कराऊँगा। यह शर्त रखने का भी केवल यही तात्पर्य था कि यदि शेष सभी शर्तें पूरी न हो सकें तो हम वहाँ सम्बन्ध रखने के लिये बाध्य न हों। साथ ही लड़की की पढ़ाई, विवाह की सभी रस्मों तथा और भी कुछ फुटकर बातों के विषय में मेर विचार पूर्णतया परिपक्व नहीं हुए थे, इस कारण उस समय मैं सगाई कराना नहीं चाहता था। परन्तु

मेरे दुर्भाग्य से मेरी "तय हुई सगाई" की बात इतनी अधिक फैल चुकी है कि समझ मे नहीं आता कि इस असत्य बात को कैसे असत्य प्रमाणित करूँ ? ऐसा प्रकट किया जा रहा है जैसे मेरे हाथ कट चुके हों, यद्यपि यह सब गलत है। अब यदि यहाँ सम्बन्ध न हुआ तो सब लोग कहेंगे कि मैंने लड़की छोड़ दी है, जबकि अभी तक मैं इस सम्बन्ध के विषय में सहमत भी नहीं हुआ था। मैंने केवल एक लिखत की थी और यह भी उसमें लिखी हुई सब शर्तों के ऊपर निर्भर थी। परन्तु आप, भाई साहब तथा भाभी जी, मेरे सन्मुख भी सब लोगों से कहते रहते हैं कि मेरी सगाई हो गई है।

इन सभी बातों से मेरा हृदय बहुत दुखी है। मेरे लिये सुखी घरेलू जीवन का मूल्य लिखित प्रतिज्ञाओं तथा कोरे वचनों से कहीं अधिक है। मेरा स्वभाव इस प्रकार का है कि यदि मुझे ऐसी पत्नी मिल जाए जिससे मेरा निभाव न हो सके और हर समय झगड़ा और विवाद होता रहे—तो न जाने मैं तंग आकर क्या कर बैठूं।

मुझे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है कि जो सज्जन मध्यस्थ बन कर यह सम्बन्ध लाए हैं—वे सब हमारे निकट सम्बन्धी हैं, और यदि हमने अस्वीकार कर दिया तो वे सब सारी आयु के लिये हम से रुष्ट हो जायेंगे। मुझे जब तक पूर्ण विश्वास न हो जायगा कि अमुक लड़की मेरे लिये हर तरह योग्य है तब तक मैं विवाह कराने के लिये कदापि सहमत न हूँगा। मैं आयु-

पर्यन्त कवारा रहने के लिए तैयार हूँ परन्तु पूर्णतया स तुष्ट हुए बिना तथा अपना इच्छा के विरुद्ध कभी भी विवाह कराने के लिये तैयार नहीं हूँ।

फिर वही झगडा

लड़के के एम०ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात् लड़की वालों ने लिखा कि विवाह की तिथि निश्चित कर दी जाए। अब तो लड़के की नौकरी भी लग चुकी है। इससे झगडा फिर नए सिरे से शुरू हो गया। लड़का कहता था कि मैं लड़की के विषय में हर प्रकार से सन्तुष्ट होना चाहता हूँ परन्तु कोई मार्ग नहीं सूझता कि यह किस प्रकार हो।

चाचा की ओर से भतीजे को पत्र

मेरी यह इच्छा है कि 'ज' की बहनें लड़की को मिल लें और फिर निश्चय कर लिया जाए। इसका तुम स्वय प्रब ध कर सकते हो कि वे कहाँ और कैसे मिलें।

भतीजे की ओर से चाचा को पत्र

मैं 'ज' के इस विचार को बिल्कुल पसन्द नहीं करता कि उसकी बहनें जाकर लड़की को देखें, क्योंकि उ हें न कोई अनुभव है और न उन्होंने अभी ससार देखा है-इसके साथ ही जैसी वे हैं वैसा ही मैं हूँ-यदि आप को मेरे ऊपर विश्वास नहीं है तो उनके देखने के पश्चात् भी आपकी सन्तुष्टि न होगी। इसलिये अच्छा यही होगा कि आप, चाची और 'ज' मेरे साथ चलें और लड़की को देख लें।

और भी जो जो शर्तें हों सभी लिख दीजिए जिस से मैं उन्हें पूरा २ उत्तर दे सकूं ।

चाचा की ओर से भतीजे को पत्र

मैं अथवा तुम्हारी चाची लड़की के स्वास्थ्य अथवा रंग-रूप के विषय में कुछ पूछताछ नहीं करना चाहते। (मुझे बड़ा दुःख है कि मैंने अपनी इच्छा के विरुद्ध यह शब्द लिखे हैं क्योंकि ऐसा विचार भी मन म कभी नहीं आना चाहिये।)

मेरी सन्तुष्टि का कोई प्रश्न नहीं, मुझे तो केवल 'ज' को सन्तुष्ट करना है और उसकी सन्तुष्टि उसकी बहनें ही कर सकती हैं क्योंकि वह कहता है कि उसकी बहनें उसके विचारों को समझती हैं और उसके दृष्टिकोण से परख सकती हैं। वे लड़की के साथ कुछ दिन रहना चाहती हैं तथा उससे परिचय प्राप्त करना चाहती हैं। तुम उन्हें जहाँ भी उचित समझो लड़की के पास ले जा सकते हो। 'ज' स्वयं लड़की को नहीं देखना चाहता। उसकी बहनों को भले ही अनुभव न हो—उन्होंने संसार न देखा हो—परन्तु उन्हें फ़ैसला नहीं करना। उन्हें तो केवल लड़की से मिलना है, और कुछ आवश्यक बातों का पता लगाना है।

भतीजे की ओर से चाचा को पत्र

मैं यह बहुत अन्याय समझता हूँ कि 'ज' की बहनें लड़की के पास जाकर कुछ दिन रहें और उसके भाग्य का निर्णय करें। यदि हम उनकी स्थिति में होते तो क्या यह सब सह सकते?

मैं मानता हूँ कि हमारे सामाजिक नियमों में सुधार की

आवश्यकता है, पर इन सुधारों का शिकार लडकियों को ही क्यो बनाया जावे, इससे तो उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाएगी। इससे तो यही अच्छा है कि लडका स्वय लडकी को देख ले, बजाय इसके कि उसकी बहनें देखने के लिये जाए।

पाश्चात्य देशों मे लड़के लडकिया स्वय एक दूसरे का चुनाव करते हैं, उनको एक साथ रहने के कई अवसर प्राप्त होते हैं। उन्हें शील, स्वभाव, गुणों एव अवगुणों का भली प्रकार ज्ञान हो जाता है, परन्तु फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि वे विवाह अधिकतर असफल हो जाते हैं।

जब घर में अतिथि आए हों तो एक शरारती बच्चा भी भला बन जाता है। एक शैतान भी एक सप्ताह के लिए सत बन सकता है तो आप इस परीक्षा से क्या आशा रख सकते हैं? मानव-स्वभाव का माप-तोल किसी मशीन द्वारा तो हो नहीं सकता। फिर भी आश्चर्य की बात है कि हम एक व्यक्ति के स्वभाव की परख उन अनजान हाथों के द्वारा कराना चाहते हैं, जिनका दृष्टि कोण ही शायद भिन्न हो।

ऐसा मालूम होता है जैसे कोई अनजान व्यक्ति लडकी की भावनाओं की परख करेगा और उसी परख पर उसका निर्णय होगा। यदि लड़की ऐसे व्यवहार के लिये न माने तो? फिर क्या इसी बात पर उसको अस्वीकार कर दिया जायगा? अच्छा, 'ज' की बहनें वहा गईं थी और लडकी ने बाहर निकलने से इन्कार कर दिया या सकोचवश अथवा अपमान के डर से उनको सीना

पिरोना, खाना पकाना तथा गाना बजाना आदि कुछ भी करके न दिखाया तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि वह अयोग्य और अनजान है और इसलिये यह सम्बन्ध छोड़ना होगा ? यदि वह किसी भी बात में कमजोर दिखाई दी तो वही बात उसके विरुद्ध जायगी। क्या किसी मानवी दुर्बलता को आँखों की ओट नहीं किया जा सकता ? और क्या यह सब लड़के की स्वार्थपरता नहीं ? क्या लड़के को भी सुधारने की आवश्यकता नहीं है ?

इसको कौन सुधार कह सकता है ? मैं दृढ़ता से कहूँगा कि यह सुधार नहीं वरन एक पागलपन है। क्या यह अन्याय नहीं ? लड़की बाजारों में बिकने वाला सौदा नहीं है—उसका भी हृदय होता है और हृदय में उमगें होती हैं।

मुझे 'ज' की यह माग बड़ी निरर्थक प्रतीत होती है और कई बार आश्चर्य होता है कि वह विवाह का आधार क्या समझता है। क्या वह समझता है कि विवाह से पहले ही एक-दूसरे के प्रति रुचि तथा प्रेम हो जावे ?

उसको ठंडे दिल से सोचना चाहिये कि जो माग उसने अपनाया है, क्या वह ठीक है ? क्या उसे विश्वास है कि इस प्रकार वह लड़की का प्रेम प्राप्त कर सकेगा ? वह प्रेम के नियमों को भूल रहा है। यदि लड़की इस परीक्षा में पास भी हो जावे, तब भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह अपने विवाहित-जीवन में भी उसी प्रकार रहेगी। परखने का यह ढंग ठीक नहीं है। मैं 'ज' से भी कहूँगा कि वह सत्य से दूर न भागे

और अपनी बुद्धि को ठिकाने रक्खे, क्योंकि हमारा यह सिद्धान्त होना चाहिये कि, "मैं मनुष्य हूँ और जिन बातों का मानव स्वभाव से सम्बन्ध है, वे मेरे लिये अस्वाभाविक नहीं हो सकतीं।"

लडके के लिए लड़की के माँ बाप का, उनकी आर्थिक एव सामाजिक स्थिति का तथा लड़की के स्वास्थ्य, रूप रग और गुणों का अच्छा होना ही पर्याप्त होना चाहिये। क्या ये बातें सबसे अधिक आवश्यक नहीं हैं ?

यदि वह दहेज तथा अन्य वैवाहिक रीतियों मे सुधार करना चाहता है, तो बहुत अच्छा है और उनका कोई विरोध नहीं कर सकता। परन्तु दूसरे लोगों के भी हृदय है, वे भी मनुष्य हैं और उनके साथ मनुष्योचित व्यवहार ही होना चाहिये। दूसरों के हृदय पर भी चोट लग सकती है।

मुझे स्पष्ट लिखें कि आप तथा 'ज' इस सम्बन्ध को स्वीकार करना चाहते हैं या नहीं, जिससे पक्का निर्णय किया जा सके।

लडके की ओर से भाई को पत्र

अभी तक मैं पीछे ही रहा था और आपकी बात चीत, पत्र-व्यवहार सभी पिताजी से ही होते रहे हैं। पर अब मामला इतना बिगड़ गया है कि मुझे निर्भय हो कर दिल खोल कर अपने विचारों को स्पष्ट कर देना चाहिये।

आपने पिताजी को लिखा है कि, "पहले सब कुछ तय हो चुका था।" परन्तु यह असत्य है। मैंने अपने पत्र में यह लिखा था कि "मैंने अपने को नीचे लिखी शर्तों पर, पिताजी के

दिए हुए वचन को पूरा करने के लिये प्रेरित कर लिया है।" पि
जी ने आप को केवल यही वचन दिया था कि, "आप को सुवि-
धिए बिना अन्य किसी स्थान पर सम्बन्ध नहीं करेंगे।" मुझे पता
है कि इसका अभिप्राय सभी हाँ ही समझते रहे, परन्तु हमारा
अभिप्राय स्पष्ट था।

आप यह स्वीकार करते हैं कि हमारे सामाजिक रीति रिवाजों
में सुधारों की बहुत आवश्यकता है। फिर ये सुधार किस
प्रकार किये जा सकते हैं? एक एक मिलकर ही समाज बनता है
तथा सुधार भी कुछ गिनती के ही मनुष्य कर सकते हैं जिनके
हृदय मे वीरता होती है। सारे मनुष्य तो एकत्रित होकर सुधार
नहीं करने लग जाते। सामाजिक रीतियों के इतिहास में यह
उदाहरण कहीं नहीं मिलता कि किसी देश अथवा जाति ने सामू
हिक रूप से झट-पट पुरानी रीतियों को छोड़ दिया हो। अकेला
दुकेला आदमी ही सुधार का काम कर सकता है और करता रहा
है। जब मेरे जैसा कोई विद्रोही स्वभाव का व्यक्ति कुछ करना
चाहता है तो दूसरे उसके मार्ग में रोड़ा क्यों अटकाते हैं? लोग
भले ही टीका टिप्पणी करें, हँसी उड़ाए, परन्तु वे मेरे मार्ग में रोड़े
क्यों अटकाते हैं? मैं दूसरों को अपने साथ नहीं मिला सकता,
मैं तो केवल इतना कर सकता हूँ कि अपने विचारों का प्रचार
करूँ और वही मैं कर रहा हूँ। क्या आप चाहते हैं कि मैं अपने
सिद्धान्तों और विचारों का ही विवाह के लिए बलिदान कर दूँ।

परन्तु मैं यह कदापि नहीं कर सकता, भले ही मेरे सगे-सम्बन्धी मुझ से रुष्ट हो जाये।

आपने अपने पत्र में लिखा है कि पश्चिम के लोग भी विवाहित जीवन को सुखी बनाने मे असफल रहे हैं। यदि असफल होने से आपका अभिप्राय 'तलाक़' की अधिक सख्या से है, तो मैं यह कहने के लिये तैयार हूँ कि यदि हमारे देश मे भी तलाक़ देने की रीति प्रचलित हो जाए तो यहाँ वहाँ से कई हज़ार अधिक तलाक़ हों और यदि असफल होने से आपका अभिप्राय दुःख दायी घरेलू जीवन से है, तो मेरा दृढ विश्वास है कि हमारे देश में स्थिति कहीं अधिक शोचनीय है, हा, यहा ससार से उदासीनता और सतोष में दिन काट दिये जाते हैं। हमारे यहाँ दुःखदायी घरेलू जीवन के बहुत थोडे उदाहरण ससार के सम्मुख आते हैं, पर उधर झट प्रकाशित हो जाते हैं। हमे उस समय तक पूर्ण रूप से सुख नहीं मिल सकता जब तक स्त्री जाति को समानाधिकार न मिलें। ससार बहुत तीव्र गति से उस आदर्श की ओर पहुँच रहा है, चाहे हम अभी इस मामले में बहुत पिछडे हुए हैं।

मेरी माँग केवल यही है कि मैं लड़की के विचारों, आदर्शों और गुणों के विषय में परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ। विवाह कोई छोटी सी बात नहीं, जिसका एक मिनट मे निर्णय हो सके। आपके लिए तथा मेरे माता पिता के लिए तो 'यहाँ' अथवा 'वहाँ' सम्बन्ध कर देने भर की ही बात है, परन्तु मेरे लिए यह सारे जीवन का प्रश्न है। जिनको आप जीवन पर्यन्त जोड़ना चाहते

हैं क्या उनकी भावनाओं और विचारों को आप एकदम आँखों से ओझल कर देना चाहते हैं? मेरी यह इच्छा है कि लड़की और लड़के को स्वयं अपने विषय में निर्णय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। आने वाले समय का किसी को पता नहीं, पर क्या इसका यह अर्थ है कि लडकी और लड़के को एक दूसरे के आज के स्वभाव, विचारों और रुचियों का भी पता न हो? यह कितनी अनुचित बात है।

मुझे इस बात का ज्ञान नहीं है कि लड़की के मा-बाप उसको अपना जीवन-साथी चुनने के विषय में कितनी स्वतन्त्रता देने को तैयार हैं, पर मुझे इस बात का विश्वास हो जाना चाहिये कि उसकी सलाह ली गई है और उसने खुले रूप में स्वीकृति दे दी है। यह कोई अयोग्य और हेय माँग नहीं है। बड़ी लड़कियों से आजकल इसी तरह पूछा जाता है। मेरी सगी बहनों से भी इसी प्रकार पूछा गया है। यह कोई अनहोनी बात नहीं है। चूँकि मैं दूसरे के विचारों और भावनाओं का आदर करता हूँ, इसलिये इस बात पर जोर दे रहा हूँ।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इन बातों की तसल्ली कौन कराए? मुझे इस सिलसिले में अभी तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला है जो इस विषय में मेरी तसल्ली करा दे, और इन बातों की तसल्ली किये बिना मैं कहीं भी विवाह कराने के लिए तैयार नहीं हूँ। मेरे कुछ शिक्षा-सम्बन्धी आदर्श बन चुके हैं—और यदि दुर्भाग्यवश मुझे कोई ऐसी पत्नी मिल जाए, जिसको परलू

काम धन्धों के अतिरिक्त और कुछ भी न सूझता हो तो हमारा जीवन किस प्रकार सुखी हो सकता है ? दूसरे, सामाजिक सुधारों के विषय में मेरे विचार बहुत क्रान्तिकारी हैं, और यदि वह पुराने विचारों की हुई तो हमारी कैसे निभ सकती है ? मेरे विचारों को तो सभी जानते हैं, पर मुझे उसके विचारों का कुछ भी पता नहीं।

केवल इसीलिये मैं अपनी बहनों को वहां भेजने की इच्छा रखता था कि वे इन बातों की तसल्ली कर आएं। लड़की के दिल में मेरे प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिये उनको वहां नहीं जाना था। मेरी यह भी इच्छा नहीं थी कि वह उन्हें सीना, पिरोना, खाना पकाना और गाना-बजाना आदि करके दिखाए। मुझे तो इन बातों का ध्यान भी नहीं था। मेरा अभिप्राय तो केवल वही था जो मैंने ऊपर लिखा है। मैं मानता हूँ कि मेरी बहनें शायद मेरा आशय पूरा न कर सकें, क्योंकि, जैसा कि आप कहते हैं कि हो सकता है कि लड़की सकोचवश उनसे बात भी न करे। मैंने तो उनके नाम तब बताए थे जब कि पिता जी ने पूछा था कि मुझे किन किन पर विश्वास है और कौन मेरे विचारों को भली भाँति समझता है। यदि आप कोई और सुगम उपाय मेरी तसल्ली के लिए बता सकते हैं तो मैं उस पर विचार करने के लिये तैयार हूँ।

मैं आपकी एक बात नहीं समझ सका। आपने लिखा है, "क्या वह यह चाहता है कि विवाह से पूर्व ही एक-दूसरे के प्रति प्रेम और रुचि हो जावे ?" क्या आपका यह अभिप्राय है कि लड़की और लड़के को उनकी इच्छा के विरुद्ध बांध देना चाहिए?

क्या इस आधार पर विवाह के पश्चात् परस्पर प्रेम हो सकता है? यह अजीब तरीक़ा है।

शेष सुधारों पर तो फिर विचार कर लिया जायगा, परन्तु सब से पहला और आवश्यक सुधार तो यही है कि लड़के और लड़की की पूरी पूरी सलाह ली जाए। नौ वर्षों से यह झगड़ा चल रहा है। मेरा हृदय बहुत दुःखी है। मैं 'ना' करने की दलेरी भी नहीं कर सका, क्योंकि यह डर था कि कहीं ऐसा करने से एक निर्दोष हृदय पर चोट न लगा बैठूं जिसका इस झगडे में कोई हाथ नहीं। उधर, आँखों पर पट्टी बाधकर 'हां' करने का साहस भी नहीं है, क्योंकि मैं हर प्रकार से अपनी तसल्ली करना चाहता हूँ। बस यही अन्तर्द्वन्द्व मेरे हृदय में कई वर्षों से चल रहा है। मैं नहीं जानता कि इसका अन्त क्या होगा। मेरी यही इच्छा है कि आप मेरे विचारों और भावनाओं को समझने का प्रयत्न करें।

परिस्थिति म परिवर्तन

इसके पश्चात् लड़के की और भाई की दो बार बड़ी लम्बी चौडी बात चीत हुई। वही लड़का जिसकी आज से चार वर्ष पूर्व बात भी नहीं सुनी जाती थी, अब उसके विचारों को समझने का प्रयत्न किया जाने लगा। चार वर्ष पूर्व लड़का एफ० ए० पास ही था और उसको सब बच्चा ही समझते थे। अब लड़का एम० ए० कर चुका था और स्वय अपनी कमाई करने लगा था, इसलिए अब उसकी बात को निरादर से ठुकराया नहीं जाता था।

दोनों ने मिलकर ठडे दिल से बात-चीत की, कई भूलें दूर

हो गई और दोनों ने ही एक दूसरे को समझ कर विचार-विनिमय का नया अध्याय प्रारम्भ किया।

लड़के की ओर से भाई को पत्र

अब जब आपने मुझे 'भ' के विचारों, भावनाओं तथा रुचियों के विषय में विश्वास दिलाया है, तब उसको जीवन-साथी बनाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। मेरी समझ मे यह बात नहीं आती कि विवाह की तिथि बहुत पहले क्यों निश्चित कर दी जाए। मैं इस बात के पक्ष में नहीं हूँ कि विवाह मे दूर तथा निकट के सम्बन्धियों और मित्रों आदि को एकत्रित किया जाए। हम अपने घर मे इस प्रकार लोगों को एकत्रित नहीं करेंगे। जब विवाह में किसी को बुलाना ही नहीं, तो इतने दिन पहले तिथि निश्चित करने की क्या आवश्यकता है? केवल एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि दोनों ही ओर के लिये दिन और समय उपयुक्त हों। इसलिए जब विवाह का समय आएगा तब डाक्टर साहिब से पूछा जा सकता है कि कौन-से दिन उनके लिये उपयुक्त होंगे और फिर निश्चित तिथि का पता भी कुछ दिन पहले दिया जा सकता है। वे उन दिनों जहा भी होंगे, वहीं विवाह-संस्कार किया जा सकता है।

आभूषणों और दहेज के विषय में मैंने निवेदन किया था कि मैं सिद्धान्त रूप से ही इनके विरुद्ध हूँ। मैं आपके इस विचार से सहमत हूँ कि ये वस्तुएं मा बाप की सम्पत्ति में से लड़की का भाग-सा बन गई हैं। मेरे मतानुसार तो, मा-बाप की सम्पत्ति पर

हम न तो पल्ला पकड़ेंगे, और न ही दोनों में से किसी का मुँह ढका हुआ होगा। विवाह की रस्म बहुत सरल और संक्षिप्त होनी चाहिए। मेरी राय है कि सायकाल के समय डाक्टर साहब के घर पहुँचें और दूसरे दिन प्रातःकाल जल पान करके लौट आए।

एक और भी निवेदन करदू कि विवाह के दो, तीन दिन पश्चात् लड़की के मायके जाने में मुझे कोई लाभ दिखाई नहीं देता। हमारी जब इच्छा होगी, जाएंगे, रस्मी आना-जाना मुझे अच्छा नहीं लगता।

भाई की ओर से लड़के को पत्र

दहेज—नवीन विचार धारा से बहुत प्रभावित होने के कारण आपने दहेज का वास्तविक अर्थ नहीं समझा। यह रीति स्त्री जाति के अधिकारों की रक्षा करने के लिए है। आप जैसे नौजवानों को, जो स्त्री-जाति की उन्नति चाहते हैं, इस रीति का पक्ष लेना चाहिये। परन्तु दुर्भाग्यवश आजकल के नौजवानों ने इसको एक सौदा बना लिया है।

आभूषण—यह स्त्री धन है, जो लड़की को कुसमय में काम आने के लिए दिये जाते हैं। यदि आप चाहते हैं कि लड़की को आभूषण न दिए जाए तो मेरी इच्छा है कि लड़की को रुपये नक़द दे दिये जाएं।

पर्दा—प्राचीन धर्म के अनुसार पर्दा वर्जित है, परन्तु लड़कियाँ स्वभाव से ही लज्जाशील होती हैं तथा मुँह खुला होने के कारण

सभी की दृष्टि उस पर पड़ेगी, इसलिये लड़की के लिये बड़ी कठिनाई हो जायगी। इसलिये लड़की की इच्छा के अनुसार नाम मात्र का पर्दा किया जायगा, जिस पर आप को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। विवाह के पश्चात् लड़की का पर्दा करना या न करना आपके या लड़की के हाथ में है, या आपके मा बाप की इच्छा पर निर्भर है।

सेहरा—लड़की की मा की बड़ी इच्छा है कि सेहरा अवश्य बाधा जाए, चाहे थोड़ी देर के बाद उसे उतार दिया जाए।

लड़के की ओर से भाई को पत्र

आपने तो केवल आभूषणों को ही स्त्री धन समझ लिया है, परन्तु स्त्री धन तो वह होता है जो "विदा के समय लड़की को उसके पिता और भाइयों की ओर से दिया जाए। ये वस्तुए तथा इसके पश्चात् दिए गए उपहार और उसके पति की ओर से मिली हुई वस्तुओं के ऊपर उसकी सतान का अधिकार है—भले ही वह अपने पति के जीते जी मर जाए। हिन्दू कानून के अनुसार यह सम्पत्ति विवाहिता स्त्री की अपनी होती है, परन्तु उसके पति को अधिकार है कि आपत्ति के समय उनका उपयोग कर ले" ('मानव विवाह का इतिहास'–पृष्ठ ४११)। इसलिये केवल आभूषण ही स्त्री धन में सम्मिलित नहीं हैं, वरन् ऊपर लिखी हुई सभी वस्तुए। यदि इन सभी वस्तुओं के देने का यही अभिप्राय था तो पुरुष के बनाए हुए इस नियम के अन्तिम भाग ने इसका सारा प्रभाव नष्ट कर दिया है ("परन्तु उसके पति को अधिकार है कि आपत्ति के

समय उनका उपयोग कर ले।") हम जानते ही हैं कि 'स्त्री धन' के ऊपर स्त्रियों का वास्तव में कितना अधिकार होता है। इसलिये मैं कहता हूँ कि डाक्टर साहब को जो भी रुपया नक़द देना है वह 'भ' को दें—मुझे न दें।

फेरों के समय पर्दा करने के सम्बन्ध मे आपने कहा है कि लड़कियाँ अधिक लज्जाशील होती हैं, इसलिए वे सकुचा जाती हैं। समझ में नहीं आता कि एक चतुर और समझदार लड़की समानता के अधिकार लेने से क्यों इन्कार करे।

क्या लड़कियाँ वीर नहीं हो सकतीं? मुझे कई पढ़ी लिखी और समझदार लड़कियों ने विश्वास दिलाया है कि वे एक मिनट के लिये घू घट नहीं निकालना चाहतीं—केवल बड़ों के डर से ही वे ऐसा करती हैं। क्या 'भ' से इस विषय में पूछा गया है? यदि वह आजकल के विचारों की है, जिसका कि आपने मुझे विश्वास दिलाया था, तो उसे घू घट को कदापि सहन नहीं करना चाहिए। आप स्वय मानते हैं कि प्राचीन काल में पर्दे की प्रथा नहीं थी। फिर पर्दे की प्रथा दूर करने में अब कौनसी बाधा है? विशेषकर उस समय कोई भीड़ तो होगी नहीं और केवल दर्जन, डेढ़ दर्जन व्यक्ति अधिक से अधिक होंगे।

सामाजिक रीति रिवाज समय-समय पर बदलते रहते हैं। विद्वानों का भी इस विषय में एक मत नहीं है। भिन्न भिन्न समयों के विद्वान् अपने समय की परिस्थिति के अनुसार प्रथाएं बाँध देते हैं। एक २ दो २ करके नए विचार और नई रीतियाँ आरम्भ

होती हैं और फिर जनता स्वय देखा देखी उसी ओर चल पड़ती है। इस समय आप मुझे समय के प्रवाह से बहुत आगे बढ़ा हुआ समझते हैं, परन्तु मेरे विचारानुसार मैं समय की गति के साथ हूँ।

सेहरा एक बहुत प्राचीन प्रथा की निशानी है। सम्भवत इसका यह अभिप्राय था कि 'दृष्टिदोष' (नज़र) न लगे, और द्वेष तथा बुरी नीयत रखने वाले लोग कुप्रभाव न डाल सकें। इसे शरीर के सबसे अधिक दृष्टिगोचर होने वाले भाग पर पहनाया जाता था, जिससे किसी की कुदृष्टि मुख के स्थान पर सेहरे पर पड़े और नव विवाहित युगल पर बुरी नज़र का कोई बुरा प्रभाव न पड़ सके ('हिन्दू रस्म रिवाज' पृष्ठ २२६)। यही है सेहरे का अभिप्राय।

क्या आप यह आशा रखते हैं कि मैं इस प्रथा को चालू रखने के लिये सहमत हो जाऊंगा? मुझे विश्वास है कि यदि लड़की की माता जी को इसका अभिप्राय समझाया जाए तो वे भी अब इसके लिये आग्रह न करेंगी। हार पहनाए जाने मे मुझे कोई आपत्ति नहीं, परन्तु वे विवाह की रस्म पूर्ण हो जाने के पश्चात् पहनाए जायें और हम दोनों के माता पिता हमें हार पहनाए।

बारात के विषय मे मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि मैं इसे आवश्यक नहीं समझता कि जो सम्बन्धी दूर रहते हैं वे भी छुट्टियाँ ले कर और कष्ट उठा कर किसी लड़के का विवाह सम्पन्न कराने के लिये आए। क्या विवाह उनके आए विना नहीं हो

सकता ? क्या घर में बैठे हुए मा-बाप, बहन भाई पर्याप्त नहीं ?

मैंने पिछले पत्र मे मिलनी के विषय में लिखा था। उसमें मेरा अभिप्राय स्त्रियों की मिलनी (जिस समय बहुत कुछ दिया दिया जाता है) तथा पुरुषों की मिलनी से था। मैंने इस रस्म के लिये भी मना कर दिया था।

आपने दुकाव के विषय में लिखा है, उस लिए निवेदन है कि गली अथवा बाजार में से जलूस निकालना उसी समय शोभा देता है जब दोनों ओर बड़ी भीड़ भाड़ हो और दर्शक लोग खड़े हों। परन्तु जब हमारे विवाह में केवल दर्जन, डेढ़ दर्जन व्यक्ति ही होंगे तब यह बड़ा हास्यास्पद सा लगेगा कि जलूस सा बना कर चला जाए।

तेल डालने का भी यही आशय है जो मैंने सेहरे के विषय में ऊपर लिखा है, सो यह भी नहीं होना चाहिए।

मुझे सब से अधिक घृणा दिखावे से है। एक नव-विवाहित जोड़ा रंग बिरंगे वस्त्र धारण करके, हाथ-पांव रंग कर, सोने चांदी के आभूषण लाद कर एक जलूस बनाकर जाए और साथ ही बाजे भी बजते जाय, यह दृश्य मुझे बहुत ही बुरा लगता है। इसी कारण मैं चाहता हूँ कि हम प्रतिदिन पहनने वाले कपडे ही पहनें। न कोई हार हो, न जलूस निकले, और न बाजे इत्यादि हों। मुझे अपनी इच्छा के अनुसार होने वाले विवाह से बड़ा हर्ष होगा। अनावश्यक प्राचीन रूढ़ियों से मेरा दिल बड़ा खट्टा होता है। यदि मेरा विवाह स्कूल में पढ़ने के दिनों में कर दिया जाता तो

मुझे विवश करके बलपूर्वक जैसा चाहते वैसा कर लेते, परन्तु अब यह नहीं हो सकता। मैं किसी के हृदय को पीड़ित अथवा निराश नहीं करना चाहता, परन्तु मैं हठ इसलिये कर रहा हू कि मैं अब इन रीतियों को भली प्रकार समझता हू। दूसरी ओर वे लोग हैं जो इन रीतियों का पालन केवल इसलिये करते हैं कि उनके पूर्वज ऐसा करते आए हैं। अब समझौता हो तो कैसे हो? मुझे अपने घर मे भी इस विषय मे बडी कठिनाई हुई। मेरी माता जी मेरे विवाह मे बहुत कुछ करना चाहती थीं, क्योंकि उनके लिये यह 'पहले पुत्र' का विवाह था। परन्तु मैंने उन्हें साफ साफ कह दिया कि यदि मैं विवाह करूँगा तो बिल्कुल अपने तरीके से करूँगा, अन्यथा नहीं करूँगा। उन्होंने थोडा रुष्ट होकर अन्त मे मेरी बात मान ली है। मुझे इस घटना से बहुत उत्साह मिला है कि अभी कुछ दिन पहले एडवर्ड अष्टम् ने अपने आदर्श के लिये राज्य तक को छोड़ दिया। क्या मैं अपने आदर्शों और विचारों पर दृढ़ नहीं रह सकता?

बहनोई की ओर से साले को पत्र

(लड़की के फूफा की ओर से लड़की के पिता को)

'अ' अपनी कठोर शर्तों को कभी नहीं छोड़ेगा और न ही यह उन शर्तों का उल्लघन सहनकर सकता है। 'भ' को "हिज मास्टर्स वॉइस" बन कर रहना पड़ेगा। यदि आपके विचार में 'भ' के भी ऐसे ही विचार हों, और यह इनके अनुसार चलने में दासता का अनुभव न करे, तो मैं सबसे पहला व्यक्ति हूँगा जो 'हां' कहूंगा।

इसलिए मेरे विचार मे सारे पत्र 'भ' को पढ़ा देने चाहियें और उसकी भी सम्मति ले लेनी चाहिए। आप परस्पर विचार करके और अपने पिता जी की राय लेकर मुझे उत्तर दें। मेरी नाराजगी का अथवा किसी अन्य बात का आप तनिक भी विचार न करें। मैं अपने ऊपर किसी भी प्रकार की जिम्मेदारी लेने के लिये तय्यार नहीं। आजकल का समय बड़ा नाजुक है, इसलिये सोच विचार कर कार्य करना चाहिए। सबसे पहले 'भ' के सुख का विचार करना चाहिए, क्योंकि सम्भवत 'ज' केवल दो-तीन दिन पहले सूचित करेगा।

भाई की ओर से लड़के को पत्र

मुझे बड़ा खेद है कि मैं आपके पत्र का इतनी देर से उत्तर दे रहा हूँ। कारण केवल यही था कि मैं आपका पत्र पढ़कर आज तक आश्चर्य में ही डूबा हुआ था कि इसका क्या उत्तर दू। एक ओर तो आप विचारों की स्वतन्त्रता का ढिंढोरा पीटते हैं और दूसरी ओर अपने विचारों को सर्वोत्तम समझ कर दूसरे के विचारों को बिना किसी युक्ति के रद्द कर देना चाहते हैं। जो बातें नितान्त निजी हैं, जिनको करने अथवा न करने का पूरा १ अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है, उन बातों को आप अपनी इच्छा पूरी करने के लिये बलपूर्वक दूसरों से मनवाना और कराना चाहते हैं।

१ ससार की प्रत्येक वस्तु में गुण भी होते हैं और अवगुण भी। देखना केवल यह होता है कि कोई वस्तु किस समय गुणकारी

है और किस समय हानिकारक। जिस प्रकार यदि खाने की वस्तु को ढक कर रखा जाय तो मनुष्य उन रोगों से बच जाता है जो मक्खियों के बैठने से उत्पन्न होते हैं, परन्तु उन्हीं चीजों को नगा रखने से हानि होती है। अफीम का यदि औषधि के रूप मे सेवन किया जाय तो यह बहुत गुणकारी होता है और यदि नशे के रूप मे इसका प्रयोग किया जाय तो इससे बुरी कोई वस्तु नहीं। इसी प्रकार दो या चार मिनट के लिये घू घट निकालने से यदि लडकी आसानी से अपने आप को लोगों की दृष्टि से बचा सके तो मेरे विचार में यह पर्दा भी अच्छा है। यह बिल्कुल निजी प्रश्न है, इसमें मुझे अथवा आपको हस्ताक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं। आपके माता पिता या सम्बन्धियों से पर्दा करना या कराना आप दोनों की इच्छा पर निर्भर है।

२ मैंने इससे पूर्व भी आपको लिख दिया था कि बारात कितनी होनी चाहिये या कितनी आपने लानी है। इस बात से डाक्टर साहब का कोई सम्बन्ध नहीं, यह सब कुछ केवल आप पर निर्भर है। परन्तु डाक्टर साहब के घर कितने व्यक्ति आने चाहियें यह विषय, क्षमा कीजिये, आपके निर्णय करने का नहीं है। वे स्वय इसका निर्णय कर सकते हैं। कई सम्बन्धी ऐसे होते हैं, जिनको बुलाए बिना काम नहीं चलता। जैसे आपने अपने माता पिता और बहनों को साथ लाने के लिए लिखा है, उसी प्रकार डाक्टर साहब की भी शोभा माता पिता, बहनों, चाचा और लडकी के मामा आदि को बुलाए बिना नहीं होगी। मैंने

आपको लाहौर मे भी कहा था कि ये सारे व्यक्ति मिलकर दस बारह से अधिक नहीं होंगे, इसलिए आपको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इन सभी सम्बन्धियों को बुलाने के लिए कुछ समय पहले सूचित करना आवश्यक है, इसलिये मैंने आपको कम से कम एक महीना पहले तिथि निश्चित करने के लिए लिखा था। मेरा अनुमान है कि चाचाजी को और मुझे भी कम से कम दस दिन पहले छुट्टी के लिए लिखना पडेगा और जब यह निर्णय हो चुका है कि फालतू सम्बन्धियों को नहीं बुलाया जायगा, तो पहले ही तिथि निश्चित न करने का मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता। मेरी भतीजी का विवाह भी बैसाख का निश्चित हुआ है डाक्टर साहब के साले के लड़के का विवाह भी आज से दो तीन महीने बाद होना निश्चित हुआ है। यदि आपके विवाह का भी दिन तय हो जावे तो छुट्टी आदि का प्रबन्ध उसी के अनुसार किया जा सकता है। सरकारी नौकरों के लिए बार-बार छुट्टी लेना बहुत कठिन होता है। आप तो बड़े नियम के पक्के व्यक्ति हैं परन्तु मेरे जैसे उजड्ड आदमी को, जिसकी पढ़ाई नाम मात्र की है और जिसने जीवन में कोई भी नियम न बनाकर ससार के लहरों के थपेड़े ही खाए हैं, हर एक व्यक्ति को प्रसन्न रखना पड़ता है। यदि आपके विचार से चाचाजी का साथ आना अथवा मेरा डाक्टर साहब के पास जाना उचित न हो, तब तो मेरे विचार में बहुत पहले तिथि निश्चित करने की कोई आवश्यकता नहीं। फिर तो मैं आपको उन रीतियों का पालन करने का भी परामर्श नहीं

दूगा, जो आपने स्वीकार करली हैं, परन् सिविल मैरिज करने के लिए कहूँगा। इस बात के लिए, हो सकता है कि, मैं डाक्टर साहब को भी सहमत कर लू।

व्यर्थ रीतिया, जैसे महदी, चूड़ा व तेल डालना आदि जो आपने लिखी हैं, नहीं की जायंगी और यदि मुझे उस समय उपस्थित होने का अवसर मिला, तो इस बात का पूरा पूरा प्रयत्न किया जायगा कि सारा कार्यक्रम आपकी इच्छानुसार हो।

लड़के की ओर से भाई को पत्र

यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि आप विवाह के समय यहा अवश्य हों। चू कि इस सारे काय के अन्दर आपका बहुत अधिक हाथ है, इसलिए आपको अपने परिश्रम की सफलता अपनी आँखों से देखनी चाहिए। परन्तु मैं समझ नहीं पा रहा कि कैसे क्या किया जाए। मैंने अभी तक निश्चय नहीं किया कि विवाह कब करू गा और कुछ कारणों से मैं बहुत समय पहले निश्चय करू गा भी नहीं। पिताजी को स्टेशन से बाहर रहने के लिए केवल रविवार के लिये आज्ञा लेनी पर्याप्त है, जो बहुत शीघ्र मिल सकती है। साथ ही मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि मेरा मन इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं है कि मैं महीना पहले विवाह की तारीख नियत कर दू। यद्यपि मेरी तबियत ऐसी है कि अन्य कई मामलों में मैं अपने प्रोग्राम कई-कई सप्ताहों एव महीनों पहले तय कर लेता हूँ, परन्तु विवाह मैंने कभी कराया नहीं है, इसलिये इस मार्ग में पहली बार पाव रखते समय झिझक हो रही है और

सोचता हूँ कि पाव सम्भाल सम्भाल कर रखना चाहिये। मैं अपनी शादी चोरी छुप्पे करना चाहता हूँ ताकि किसी को पता ही न लगे। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप किसी कार्यवश, सयोग से, डाक्टर साहब के यहा आये हुए हों और मैं भी माता-पिता के साथ पहुँच जाऊ और चुपचाप विवाह कराके लौट आऊ। गली मुहल्ले में भी इस बात का पता न चले। मुझे पता नहीं कि मेरा दिल इस तरह का विवाह करने के लिये क्यों लालायित है, परन्तु मेरी हार्दिक अभिलाषा यही है। यह परमात्मा ही जानता है कि मेरी यह अभिलाषा पूरी होगी या नहीं। मैं अपना विवाह कचहरी में नहीं कराना चाहता।

पर्दे के सम्बन्ध में मुझे यह चिन्ता है कि यदि लड़की अपनी मर्जी से विवाह के समय पर्दा करना चाहती है तो हो सकता है कि वह बाद मे भी कुछ सम्बन्धियों से पर्दा करना चाहे। तब पर्दा न करने के लिये मैं उसे किस तरह विवश कर सकूँगा? मैं तो यह चाहता हूँ कि उसके विचार ऐसे हों कि यह स्वय पर्दा करना बरदाश्त न करे। मेरी बहनों के भी इसी प्रकार के विचार हैं। मैं नहीं चाहता कि विवाह के बाद मुझे पर्दा हटवाने में परेशानी उठानी पडे। इसलिये मैं पहले ही यह प्रथा दूर कर देना चाहता हूँ। मुझे एक और भी डर है कि शायद 'म' स्वय पर्दा करना न चाहती हो, वरन् मा बाप एव अन्य सम्बन्धियों से डरती हुई पर्दा करने के लिये विवश हो रही हो। इस सम्बन्ध में आपको ही पता होगा। परन्तु यदि यह बात है तो विवाह के बाद भी यह विवशता बनी

रहेगी, क्योंकि पर्दे की प्रथा को छोड़ना आसान नहीं है, यह बडे साहस का काम है—कई बातें सुननी और सहनी पड़ती हैं।

एक बात मेरी समझ में नहीं आती—'भ' ने विवाह के समय पर्दा करना किससे है? उस समय सिवाय मायके और ससुराल वालों के अन्य किसी व्यक्ति ने उपस्थित नहीं होना। यदि 'भ' उस समय ससुराल वालों से तथा सम्बन्धियों से पर्दा करना चाहती है तो फिर तो बस पूरा पढ लिया! और यदि वह मुझ से पर्दा करना चाहती है तो मुझे आज्ञा दे दो, मैं अपनी आखें बन्द कर लूगा। भाई साहब! क्या आप 'भ' के साथ इस मामले में स्वय बात-चीत नहीं कर सकते (जब भी अवसर मिले)? शायद वह सकोचवश माता पिता के साथ दिल खोल कर बात न कर सकती हो, और आपको पूरी तरह अपने दिल की बात बता दे।

मामी को लड़के का पत्र

'भ' के कपड़ों के सम्बन्ध में मैंने सोचा है और सलाह ली है। मेरे विचार से 'भ' को पूरी स्वतत्रता होनी चाहिये कि जिस तरह के कपडे वह पसन्द करे वही पहन ले। शोख रंगों के कपडे कोई समझदार लड़की पहनना पसन्द नहीं करती। न ही मैं यह समझता हूँ कि सलमे सितारे के एव जडाऊ कपडे ही सुन्दर लगते हैं। आप 'भ' को अपनी पसन्द के कपडे ही लेने दें। अपनी या किसी दूसरे की रुचि, पसन्द एव इच्छा पर आप इस मामले का निर्णय न करें। जिसे कपडे पहनने हैं उसे ही पसन्द करने चाहिए।

मैंने पहले भी अपने पत्रों में विनती की थी कि विवाह के निकट आकर दवादव कपडे खरीदने या सिलवाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। किस लड़की के पास पहले कपडे नहीं होते? और यदि पहले के कपडे अच्छे न हों तो यह बात लड़कियों के साथ अन्याय एव अनुचित व्यवहार की निशानी है।

मैं खद्दर पोश नहीं हूँ, परन्तु मुझे यह बात भी बड़ी विलक्षण लगती है कि विवाह के समय रेशमी कपड़ों, चादरों, गिलाफों आदि पर बहुत-सा रुपया खर्च कर दिया जाए। नव विवाहिता लड़की को तो रेशमी कपडे पहने बिना खाना ही नहीं पचता। बिना रेशमी कपडे पहने मानो मा-बाप और ससुराल का अपमान होता हो। सुथरे, सोफियाने रेशमी कपडे भले ही पहन लिये जाएँ, पर यह ख्याल नहीं होना चाहिये कि बहू बेटी को अवश्य रेशमी कपडे पहना कर पीढे पर बैठा दिया जाए—जैसे नुमायश लगाई हुई हो।

लड़के का भाई को पत्र

मैंने इस बात की इजाजत तो बिल्कुल नहीं दी थी कि वे लोग अपने सारे निकट सम्बधियों को बुला लें। मेरी यह अन्तिम विनती है कि वे इस प्रकार से सम्बधियों को एकत्रित न करें। हम भी यहा किसी को नहीं बुला रहे हैं। यहाँ तक कि यहीं रहने वाले सम्बधियों को भी हम बरात में शामिल नहीं कर रहे हैं। अच्छा यही लगता है कि दोनों ओर से एक जैसा ही कार्य किया जावे।

विवाह की तारीख निश्चित की गई है, डाक्टर साहब को चिट्ठी लिख दी गई है। आशा है यह दिन उनको हर तरह से ठीक रहेगा। प्रोग्राम यह है कि शनिवार को हम लोग छ बजे की गाड़ी से पहुँचेंगे। हम लोग सख्या में पाँच-छ से अधिक नहीं होंगे। शाम का खाना हम वहाँ खाएगे। अगले दिन सवेरे विवाह-सस्कार हो जाएगा, जो ८ बजे तक सम्पूर्ण हो जाना चाहिये। फिर थोड़ा-बहुत खा पी कर हम लोग पौने दस बजे की डाक-गाड़ी से वहाँ से चल पड़ेंगे।

आपने मेरे लिये अब तक बहुत कुछ किया है, जिस के लिये मैं आपका बहुत अनुगृहीत । परतु अभी मैं आपकी कुछ और कृपाओं का आकाँक्षी हू। आप ने अपने पत्र मे वचन दिया था कि यदि आप विवाह के समय मौजूद हुए तो इस बात का ध्यान रक्खेंगे कि सारा काम मेरी इच्छा के अनुसार हो। यदि किसी बात मे सन्देह हो तो आप मुझ से पूछ सकते हैं। मैं आनद मगल के अवसर को रूखा नहीं बनाना चाहता। आप देखेंगे कि यदि सब काम निर्विघ्न होता गया तो मैं स्वय उस अवसर की खुशी को बढ़ाऊगा।

स्टेशन से हमें ले जाने के लिये आप आएगे ही। अन्य कोई व्यक्ति इस काम के लिये स्टेशन पर न आवे। बस एक टागे में बैठ कर हम लोग घर चले जाएगे। घर पहुँचते ही आप हम सब को सीधे घर में ले जाए। बाहर गली या बाजार में बिल्कुल नहीं खड़े होना। न ही वहाँ कोई प्रथा पूरी करनी। न गली मुहल्ले में

हमारी प्रतीक्षा करने वालों की भीड़ लगी हुई हो। आप हमें अन्दर बैठक में ले जाएं जहाँ घर के सब लोग बैठे हों। जो दूसरे पक्ष के किसी व्यक्ति को न जानता हो उसका उससे परिचय करा दें। इस तरह हम लोग आध पौन घटे मिल कर बैठेंगे। हम में से जिसे प्यास होगी वह शिकञ्जवी या पानी पी लेगा। उस समय और कुछ न खिलाया पिलाया जावे। उसके बाद पाठ-पूजा, सन्ध्या आदि करके खाना खाएंगे और उसके बाद शीघ्र सोने का प्रयत्न किया जाएगा—क्योंकि अगले दिन सवेरे जल्दी उठना है।

रात के भोजन के समय आपने यह देखना है कि सब बड़े छोटे इकट्ठे बैठ कर खाना खाएं। यदि स्त्रियां भी सब के साथ बैठ कर खाना खा सकें तो और भी अच्छा हो। नहीं तो वे अलग—दोनों ओर की स्त्रियां मिल-बैठ कर—खाना खाएं। भोजन खिलाने का कार्य केवल दो तीन व्यक्तियों को सौंपा जा सकता है। परन्तु डाक्टर साहब तथा डाक्टरनी जी अवश्य हमारे साथ बैठकर भोजन करें। आपका तथा भाभी जी का भी हमारे साथ बैठना आवश्यक है। मैं नहीं चाहता कि खाने-पीने के समय चुप चाप बैठकर जल्दी-जल्दी पेट भर कर उठने की जल्दी की जावे। भोजन के समय बातचीत होनी चाहिये तथा एक दूसरे के साथ जान पहचान होनी और बढ़नी चाहिये। इसलिये आपका और भाभी जी का हमारे साथ बैठना जरूरी है।

वहां ठहरने के प्रबंध के सम्बन्ध में यह निवेदन है कि टट्टियों और स्नान घर का प्रबंध सन्तोषजनक होना चाहिये ताकि

सवेरे तैयार होने मे देर न लगे और सब लोग तैयार होकर छ बजे तक विवाह-सस्कार पर आ बैठें।

'भ' को घू घट विल्कुल नहीं निकालना। विवाह संस्कार के बाद 'भ' बाबूजी को नमस्कार करेगी तथा हम दोनों भी एक-दूसरे को नमस्ते कह देंगे।

विदा के लिये मेरी तो यह इच्छा है कि घर पर ही 'भ' को विदा कर दिया जाए और स्टेशन तक हमे छोडने केवल एक-दो व्यक्ति ही आवें। 'भ' को डोली में न बिठाया जाए। न ही कोई बैंड बाजा आदि बजे। मैं बडा प्रसन्न हूँगा यदि विदा प्रसन्न चित्त से की जाए। रोने धोने का प्रोग्राम बिल्कुल न किया जाए।

खाने पीने के सम्बन्ध में यह विनती है कि बहुत से पदार्थ बनाने की कोई आवश्यकता नहीं। वहा हमें खाना शाम को, अर्थात् केवल एक ही बार, खाना है। अगले दिन सवेरे विवाह के बाद थोडा-बहुत प्रातराश करके हम लोग चल ही पड़ेंगे।

विवाह

इतने झगड़ों झमेलों के बाद विवाह आखिर इस तरह हुआ —

बरात कोई नहीं ले जाई गई। केवल वर, उसके पिता, छोटा भाई तथा छोटी बहन विवाह में सम्मिलित होने के लिये गए। वर के यहा सगे-सम्बधियों को बिल्कुल इकट्ठा नहीं किया गया। लड़की वालों ने अनेक प्रार्थनाओं के बावजूद कुछ सम्बधियों को इकट्ठा कर लिया। (लड़की का मामा, मामी, फूफी, फूफा, तथा बहनोई बाहर से आए)। वर-पक्ष के लोग शाम को ६ बजे यहा पहुँचे

जगह कहा, "सात सूट लड़के को मिले हैं और ७ साड़िया लड़की को। १०००) नक़द दिया गया है। लड़की वालों ने लड़के से डर कर विवाह से एक दिन पहले सब मिलने-जुलने वालों और सगे सम्बन्धियों को दावत दे दी थी।"

२ लडकी वालों के सम्बन्धियों ने कहा कि "लड़के ने रुपया माग कर लिया है। स्वय लड़के ने अपने मुँह से अपने ससुर से रुपया मागा था। उनके पास इतना रुपया नक़द नहीं था। तो चार सौ रुपया हमने दिये, चार सौ लड़की के मामा ने, तथा दो सौ रुपये डाक्टर साहब ने अपने पास से डालकर १०००) पूरे किये।"

३ किसी और ने कहा कि "लड़की वालों ने लड़की के कपड़ों और रुपये को दहेज की भाति बिरादरी में दिखाया।"

४ "लड़के का एक सम्बन्धी शहर छोड़कर दो सौ मील दूर चला गया क्योंकि उसे इस बात पर शर्म आई कि लोग कहेंगे कि उसे बरात में शामिल होने के लिये भी नहीं कहा गया।"

५ लड़के वाले के घर में जिनका विवाह शादी में आना-जाना और लेना देना था, उन्होंने कहा, "बेचारे भूखे हो गए हैं। पास कुछ है ही नहीं। पहले पुत्र का विवाह किया और सारी बिरादरी और भाईचारे को तिलाञ्जलि दे दी। कई लेने वाली बहन-बेटियां घर पर आ बैठी कि "लेना हमारा अधिकार है।"

६ बजाजों, हलवाइयों, दर्जियों आदि ने कहा, "हमने सोचा था 'ज' का विवाह होने वाला है, हमारी अच्छी कमाई होगी,

परन्तु इन लोगों ने चोरी चोरी ही विवाह कर लिया।"

७ लड़की के मायके में, जब वह विवाह के बाद गली में निकली तो स्त्रियों ने एक दूसरी से कहा, "देखो जी इस लडकी का विवाह हो गया है। विवाह के समय भी इसने सफेद कपडे पहने हुए थे। इस से तो कवारी लडकियाँ ही अधिक शौक़ीन होती हैं।"

८ गली वाली एक अन्य महिला ने कहा, "लड़की के बाप ने तो गजब कर दिया। धोये हुए कपडे लड़की के सूट-केस में भर कर पकड़ा दिये।

९ लडके के मा-बाप ने उसकी जान पर बना दी—"तूने शहर में हमारी तो ऐसी मिट्टी खराब की है कि हमें कहीं खडे होने योग्य भी नहीं छोडा।" उन्होंने लड़के से मुँह फुला लिया और धमकी देने लगे कि "तेरे साथ मेल-जोल, आना-जाना और बोलना चालना सब बन्द हो जाएगा। यदि कोई सज्जन, मित्र ऐसे सीधे-सादे विवाह की प्रशसा करते भी थे तो मा बाप समझते थे कि उनके साथ व्यग किया जा रहा है।

लड़की नरम दिल की होने के कारण इन व्यगों से दु'खी होती रहती थी। वह अपने पिता को पत्र लिखती है, "वही लोग जिन्हें आप अपने समझते हैं और जिनके लिये आप बड़ा स्नेह रखते हैं, हमारी बदनामी कर रहे हैं। खैर, मैं जानती हूँ कि सुधार करने वालों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, बड़ी बदनामी झेलनी पडती है, सो हम झेल रहे हैं और आगे भी झेलने के लिए तैयार हैं। हमने अपने सिद्धान्तों पर

दृढ़ रहना है, लोग चाहे कुछ भी कहें और कुछ भी झूठी-सच्ची बुराइयां करें।"

लड़के का पत्र भाई को

मैं अपना यह परम कर्तव्य समझता हूँ कि आपकी भारी कृपाओं के लिये आपका हृदय से धन्यवाद करूं। आपने मेरे लिये बहुत कुछ किया है, आपका एहसान मैं कभी नहीं भूल सकता। विवाह के अवसर पर सब काम मेरी इच्छा के अनुसार हो सका, यह सब आपकी ही कृपा थी। इस सारे कार्य की पूर्ण सफलता के लिये मैं आप दोनों का तथा डाक्टर साहब का अनुगृहीत हूँ।

अब मेरी परीक्षा का समय आया है कि मैं अपने आदर्शों के अनुसार योग्य पति बन कर दिखाऊं। इस सम्बन्ध में आपको कई चिन्ताएं होंगी, केवल समय बतलाएगा कि ये चिन्ताएँ ठीक हैं या व्यर्थ।

हां, एक बात का मैं आपको अभी विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हम दोनों को किसी प्रकार का पछतावा या अफ़सोस नहीं है।

लड़की का पत्र अपनी बूआ तथा फूफा के नाम

आपकी बधाई पहुँची, जिसके लिये मैं आपका सच्चे हृदय से धन्यवाद करती हूँ। आदरणीया बूआ जी की चिट्ठी से पता लगता है कि वे मेरे बारे में बहुत अधिक चिन्ता करती हैं। सो कृपा करके उन्हें विश्वास दिला दें कि मैं हर तरह से सकुशल हूँ और

मुझे पूरा विश्वास है कि मैं अपना सारा जीवन सुखी व्यतीत करने में सफल हो जाऊंगी। मुझे इस बात की भी बडी प्रसन्नता है कि मैं सुधारकों के साथ मिलकर वैसे भी मानव-जीवन को सफल कर सकूंगी।

लड़के को भाई का पत्र

आपके पत्र पढ़कर मुझे बडी प्रसन्नता हुई है कि आप दोनों एक-दूसरे से पूरी तरह सन्तुष्ट हैं। यह चीज वैवाहिक जीवन में अत्यन्त दुर्लभ है। मुझे पूरा विश्वास है कि 'भ' बड़ी सुशील और आज्ञाकारिणी है। वह कभी आपस में भेद भाव उत्पन्न नहीं होने देगी। मुझे पहले जितनी चिन्ता थी, तुम्हारा पत्र पढ़कर उसकी अपेक्षा कई हजार गुना हर्ष हुआ है।

नई समस्याएं

विवाह के बाद सब से कठिन समस्या यह उपस्थित हुई कि "सम्बन्धियों और सगों की भेंटें और 'भाजिया' आदि किस तरह बन्द की जाए।" ना करने से सगे सम्बन्धी गुस्से हो जाएंगे। विवाह से लौटते ही गली मुहल्ले, कुटुम्ब और सम्बन्ध की स्त्रियां 'मुँह दिखाई' के लिये आ पहुँचीं और रुपये देने के लिये हठ करने लगीं। जब लड़की मायके गई तो उसकी माँ ने उसे रुपये और कपडे आदि देने चाहे, जो लड़की ने हृदय पर पत्थर रखकर माँ को नाराज करके वापस कर दिये। एक बार लड़की का पिता लड़की की ससुराल में आया और उसने लड़की के हाथ पर कुछ रुपये रखने चाहे। बड़ी कठिनाई से वे रुपये वापस किये गए।

लड़की की बूआ, फूफा, मामा आदि ने उसे कुछ देने के लिये बहुत ज़ोर लगाया।

किसी से कुछ न लेने में सबसे बड़ी कठिनाई यह पेश आती है कि सम्बन्धी क्रुद्ध हो जाते हैं, उन्हें समझाना कठिन हो जाता है, और वे यह समझते हैं कि ये लोग भविष्य में देने से बचने के लिये इस समय हमसे कुछ नहीं लेना चाहते। अगले पत्र में लड़की ने अपना मन्तव्य प्रकट करने की कोशिश की है।

लड़की का अपने फूफा साहब को पत्र

कल मैंने आपकी सारी बातें बड़े ध्यान से और प्रेम-पूर्वक सुनीं। मैंने उन बातों पर घर लौट कर सारी रात और आज सारा दिन बड़ी शान्ति के साथ विचार किया। पूज्य फूफा जी! क्या उस घर में पति पत्नी का जीवन सुखी हो सकता है जहाँ दोनों के विचार एक-दूसरे से भिन्न हों। यदि मैं अपना जीवन दुखी बना लूंगी तो संसार में थोड़े ही दिन व्यतीत कर सकूंगी। मैं तो अपने जीवन को अधिक से अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न करती हूँ और करती रहूँगी।

हमारे सारे रिश्तेदारों के मन में यह विश्वास बैठ गया है कि मैं जो भी काम करती हूँ 'ज' जी के कहने से ही करती हूँ और मैं अन्धी होकर उनका अनुसरण करती हूँ। परन्तु विश्वास कीजिये कि यह बात सोलह आने असत्य है। उनकी ओर से मुझे पूरी स्वतन्त्रता है। मैं हर काम अपनी इच्छा के अनुसार कर सकती

ले लेते हैं। हम चाहे एक दूसरे की स्वतन्त्रता में हस्ताक्षेप करना नहीं चाहते, परन्तु यह बात स्पष्ट प्रकट है कि यदि हम दोनों एक-दूसरे के विरुद्ध काम करने लग जाए तो हम कभी भी अपना दाम्पत्य जीवन प्रसन्नता-पूर्वक नहीं बिता सकते।

दो तीन वर्ष पहले मेरे विचार ऐसे नहीं थे, पर ज्यों-ज्यों मैं 'ज' जी के विचारों से परिचित होती गई, मेरे भी वैसे ही विचार बनते चले गए। चाहे वे विचार अच्छे हैं या बुरे, परन्तु मुझे ये सारे अच्छे ही लगते हैं, क्योंकि अब मैं पूरी तरह इन विचारों से सहमत हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि हम कौनसा बुरा काम कर रहे हैं। हमारा दिल साफ है। यदि कोई हमारे विचारों को समझने का प्रयास नहीं करता तो उसकी इच्छा। आज नहीं समझते तो कुछ वर्ष बाद सही। हमने अपने ये नियम इसलिये नहीं बनाये हैं कि हम रिश्तेदारों से दूर हो जाए, बल्कि ये नियम उनके अधिक निकट पहुँचने के लिये धारण किये हैं। हमारे नियमों और सिद्धान्तों का वास्तविक अर्थ ही यह है कि सम्बन्धियों का मिलना दुखदायक न रहे, बल्कि सब आपस में हँसी-खुशी मिलें-जुलें। लेन देन की प्रथा के कारण कई रिश्तेदार घर के सामने से बिना मिले निकल जाते हैं। बहन-बेटी के यहाँ लोग इसलिये जाने से कतराते हैं कि कुछ देना पडेगा। यदि मैं पिता जी से एक बार कुछ ले लूँ तो सदा मिलने के लिये जाते समय यह ख्याल दिल में आएगा कि जब मैं जाऊँगी तो पिता जी मुझे कुछ न कुछ देने के लिये बाध्य हो जाएगे। इसलिए कई बार मन

करते हुए भी मैं वहा जाने से कतराऊँगी। परन्तु अब मेरा जब भी मन करेगा मैं निःसकोच मिलने के लिए जा सकती हूँ। न उन्हें ही मेरे जाने से चिन्ता होगी कि लड़की को कुछ बनाकर देना है।

पूज्य फूफा जी! आप विश्वास कीजिये कि मुझे जितनी खुशी न लेने से होती है उतनी लेने से शायद कभी न होगी। मैं मानती हूँ कि जो रिश्तेदार मुझे केवल प्यार के कारण कुछ देना चाहते हैं उन्हें बड़ी निराशा होती है। परन्तु सब लोग प्यार से नहीं देते, बरन् रस्मी तौर से या 'लेन देन' क रूप में देते हैं। यह कितना अच्छा हो कि जो सगे-सम्बन्धी हम से सची सहानुभूति रखते हैं वे जबरदस्ती करने की कोशिश न करें, बल्कि, यदि हो सके तो, हमें अपने सिद्धान्तों और आदर्शों में सफलता प्राप्त करने में सहायता दें। हा, आवश्यकता पड़ने पर हम उन लोगों से, जिनके हृदय में हमारे लिये प्यार है, चीज एवं रुपया आदि माग कर ले सकते हैं।